महाकुंभ में माणिक मृगमन

शुभदा पांडेय

हिंदी श्री
HINDI SHREE

ISBN- 978-93-48177-33-9

महाकुंभ में माणिक मृगमन
- शुभदा पांडेय

प्रकाशक-
हिंदी श्री पब्लिकेशन
कान्ति निवास, मलेपुर, सुरियावां, भदोही, उत्तर प्रदेश-221404
दूरभाष- 9005638004, 9530696004
Email: hindishree@gmail.com
website- www.hindishree.com

प्रथम संस्करण 2025
कॉपीराइट - लेखक

आवरण व टाइप सेटिंग-
सुरेन्द्र प्रजापति (मो.: 9981622685)

मूल्य 250.00 रुपये

Mahakumbh Me Manik Mrigman
by- Dr. Shubhada Pandey

भारत में मुद्रित

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। प्रकाशक / लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश की फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा मशीनी, किसी भी माध्यम से अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता। किसी भी तरह के विवाद की स्थिति में न्यायिक क्षेत्र संत रविदास नगर होगा।

---

* इस पुस्तक में लिखे गये सभी विचार लेखक के अपने विचार है उससे प्रकाशक की सहमति या असहमति आवश्यक नहीं है।

महाकुंभ की लोक आस्थाओं के तत्व दर्शन

जीवन में न जाने कितने शहर छूटे, कितनी चीजें छूटी, कितने लोग बिछड़ गये। रोज ही ऐसा कुछ देखने का अभ्यस्त सा होता जा रहा है। पर अभी भी जब गंगा बिछड़ती है तो, आंखें भर आती हैं। अगर वो जल है तो मेरा अस्तित्व और जीवंतता भी है। मेरे भीतर का पचहत्तर प्रतिशत अंश है। क्यों विकल नहीं होऊं? अगर नदी समझूँ तो मेरा संस्कार, पुराण, कथानक, पहचान, लिपि, भाषा, धरोहर क्या नहीं है? हालाँकि मेरा जन्म कुशीनगर जिले के तमकुही रोड़ कस्बे में हुआ था, और मुझे बासी नदी का सामीप्य मिला। सारे पर्व वहाँ एकत्र होते। किंतु प्रयागराज मेरी ननिहाल होने से बचपन से मुझसे संबद्ध रहा। जब कभी वहाँ जाते संगम हमारी प्रथम वरीयता होती थी। बहुत सारे संस्कार मां ने उनके साक्ष्य में सम्पन्न किए। कुछ बड़े होने पर भगीरथ की कथा, उनके पुरखों का तरना और इस धरती की सभ्यता को श्रृंगारित करने का अपूर्व योगदान भी गंगा का ही है।

हिमालय से उतरती गंगा सबकी अपनी है। उसके यहाँ भेद का लकीरें नहीं हैं। उसके जल की पावनता के बारे में तो कहना ही क्या? संसार का शुद्धतम और प्रमाणित औषधि है गंगा। उसके जल को चाहे कितने समय तक रखिए वह अपावन नहीं होता। हमारे जीवन के विविध मांगलिक अवसरों पर इसकी पूजा-अर्चना की जाती है। गंगा जहां भी हैं उनकी गरिमा पूजनीय है, पर प्रयागराज की बात ही कुछ और है। तीन पौराणिक आध्यात्मिक अध्यायों को लेकर बहने वाली धाराएं यहाँ एक हो जाती हैं। सबका समन्वय इसका मूल मंत्र है। इसलिए वह तट देश का सबसे विशाल और पवित्र भूभाग है। जहाँ मानव संस्कृति के उर्ध्वगामी उन्नयन के लिए सृष्टि का प्रथम यज्ञ सम्पन्न हुआ था। इसीलिए इसका नाम भी प्रयाग पड़ा। यह वैश्विक - विमर्श का पुरातनतम केंद्र है। जहां धर्म के समस्त स्वरूपों का एकत्रीकरण और प्रदर्शन होता है। गंगा में चाहे कोई भी नदी मिले, उसका जल भी गंगाजल हो जाता है, इसलिए असंख्य नदियों के मिलने के बाद भी गंगा ही अधिष्ठात्री मानी जाती है।

इसके किनारे विपुल रोगों का निवारण होता है। यहाँ पितरों और पूर्वजों का

तर्पण किया जाता है। परिवार में किसी की मृत्यु के बाद उसकी अस्थियां यहाँ अवश्य ही विसर्जित की जाती हैं। इस विधि को पूरा किए बिना उस व्यक्ति की अंतिम क्रिया पूरी नहीं मानी जाती। देश-विदेश के लोग महीनों बाद भी इस प्रक्रिया को पूरा करते हैं।

इसके प्रति अटूट आस्था का अंदाजा इससे लगा सकते हैं कि प्रत्येक सनातनी के घर में गंगाजल का होना अनिवार्य है। सभी शुभ कार्य में और मृत्यु के समय भी इसका आचमन अवश्य कराया जाता है। इसके पुण्यभूमि पर लिए गए शुभाशुभ संकल्प अवश्य ही पूर्ण होते हैं। इसलिए प्रायः लोग अशुभ विचारों से दूर रहते हैं। इसके जल को लेकर झूठी कसम नहीं खाई जा सकती। वर्ष 2007 के आसपास मैं उदर विकार के कारण अत्यधिक अस्वस्थ हो गई। हमने प्रयागराज वास किया और नित्य नियम से संगम जाते, लेटे हनुमान जी का दर्शन करते। उनकी आराधना करते फिर लौट आते।

इस ठहराव के अनेक संस्मरण हैं। पर परिणामतः मैं स्वस्थ हो गई। मेरे लिए तो वे प्रत्यक्ष जीवनदायी हैं। इस महाकुंभ की अविस्मरणीय यादें लेकर लौटी हूँ। व्यवस्था और साधन, सुरक्षा सब कुछ नियंत्रित था। आराम से स्नान-दान चल रहा था। एक ओर से आने वालों का तांता नहीं कम हो रहा था, तो जाने वाला मार्ग घने रूप से चल रहा था। मेरी ये रचनाऐं महाकुंभ की अनेक प्रसंगों की इहलीला हैं। विश्वास है आपको इनसे गुजरना सुखकर लगेगा। गंगा की स्मृतियों में मैं जहाँ अंकित हूँ, वह केवल अनुभूति का विषय है।

आपको इस कृति को सौंप कर ही मेरा महाकुंभ पूर्ण हो सका है। हमारे बीच के पीपे के पुल गुलजार हैं। रोज ही टहल आती हूँ। बिन आती हूं कुछ सपने, जो हमेशा ही अबूझ रहते हैं। एक नाव जो जिंदगी कही जा सकती है, सतत प्रवाहमान है और इसके तटों से आबद्ध भी। अथ से इति तक जहाँ वर्चस्वमयी गंगा हिलोरे ले रही हों, वहाँ और कुछ कामना भी क्या हो? शून्य मन की अबाध पृष्ठभूमि है गंगा।

डॉ शुभदा पांडेय

अनुक्रम

गंगा में तिरोहित होता मन	6	नागवासुकी - महिमा	53
अक्षय वट	8	समुद्र मंथन और अमृत	54
आस्था का महाकुंभ	10	आध्यात्मिक त्रिवेणी	56
महाकुंभ की गंगा	11	संगम का विविध भक्तिकाल	58
झूंसी से प्रयागराज	13	और वे गंगा हो जातीं	61
फाफामऊ पार करते हुए	14	महाकुंभ में सूर्य का महत्व	64
गंगा की अदालत में	16	महाकुंभ में अखाड़ों का प्रतिपाद्य	70
महाकुंभ से लौटे लोग	18	महाकुंभ में सूर्य महोत्सव का महात्म्य	78
भरद्वाज आश्रम	20	साहित्य और संस्कृति में पीपल और पर्यावरण	85
हिंजडों की दुवाएं	22	महाकुंभ गुरु-संस्कार का महोत्सव	89
निशान का जुलूस	23	महाकुंभ में राम की अलौकिक वंशगाथा	94
संगम की स्त्रियाँ	26	याज्ञवल्क्य ऋषि का प्रयागानुराग और राम कथा	101
विश्वास की पराकाष्ठा	27	गोस्वामी तुलसीदास जी का प्रयागराज से संबंध	112
गंगा से बतियाने	28	महाकुंभ में पड़िला महादेव	113
महाकुंभ की त्रिवेणी	30	प्रयागराज की महिमा	114
घाटों को खोजती नदी	31	प्रयागराज के जागृत देवता- लेटे हनुमान जी	115
गंगा का रंगमंच	32	प्रयागराज और भारद्वाज ऋषि	117
महाकुंभ में	35	प्रयागराज क्यों है तीर्थराज	121
नक्षत्रों का शाही नहान	36	महाकुंभ और महाराज हर्षवर्धन	124
महाकुंभ में पक्षी	40	अलोपी देवी मंदिर और महाकुंभ	126
परंपराओं की पुनरावृत्ति	42	महाकुंभ यात्रा का प्रमुख धाम - श्रृंगवेरपुर	129
महाकुंभ से लौटी शालिनी फूआ	45		
गंगा में खोई मां	47		
विवाह से पूर्व कन्याओं की गंगा पूजा	50		
महाकुंभ में भाषाएं	52		

□□□

गंगा में तिरोहित होता मन

ऐसा कभी नहीं हुआ
जब प्रयागराज गए
और संगम नहीं गए।

पहले बंधे की चढ़ाई
फिर ढ़लानदार उतार
दोनों ओर बाजारों के बीच से।
पार हो।
रेतों के बीच बसे निर्लिप्त जल
दूर-दूर तक जल ही जल

अर्धवृत्ताकार किले के प्राचीर को
आकाशवाणी सा
श्यामवर्णा स्पर्श।
और दूसरी ओर श्वेतवर्णा विरक्त
अनुरागमयी गंगा।

कभी ऐसा नहीं हुआ
कि मन भरा हो
या लौट चले ऐसा किया हो,
एक विराट दुनिया के
दर्शन में खोया मन।
हर पल लहरों के साथ
सदा बहता रहा।

हर लहर पर हर बार
एक मन।

मन को बहते देख, नहीं पकड़ पाई उसे
ना चेष्टा ही की।
अनगिनत मन
जब गंगा में तिरोहित होते रहे
मेरे कभी न लौटने वाले मन का
सौंदर्य से सत्य तक डूबना
और फिर लौट आना
उस जमीन पर
जहाँ सब कुछ प्रतिबिंब है।

कभी न खोया हो मन
ऐसा कभी नहीं हुआ।

□□□

अक्षय वट

हर कहीं जाने का एक सुयोग ही
वहाँ पहुँचाता है।

किले के भीतर जाकर
अक्षयवट से मिलना
कठिन और दुष्कर था।

हम हर बार जाते और
बिना दर्शन के लौट आते।
एक अधूरी चाह और एक पूरे विश्वास के साथ।

पिछली बार इन्हीं ठंड के दिनों में
संगम की ओर से बने नये द्वार से
जाना हुआ।
नव निर्मित रास्ते से हम
आसानी से वहाँ पहुँच कर
हतप्रभ रह गए।

रामायण और महाभारत की कथा सुनाता वृक्ष
मानव की सदाशयता पर अहैतुक
आनंद बरसाने वाला।
बोलता, गाता, चलता,और
सजल विशाल नयनों से
प्रयागराज की सिद्ध स्थली सा
तब लगा आखिर लोग क्यों करते हैं कल्पवास?

उसके पत्ते-पत्ते पर
राम-कथा की ऊर्मिल लिपियां
शिराओं तक फैली हुई हैं।
यह वृक्ष नहीं साक्षात् सजीव
कोई वरद् श्रृषि हैं-जिनके आशीष से
अहर्निश
अक्षयता प्लावित है यहाँ।

मन का अकलुषता और निर्मलता से
सिंचित यह भूमि धन्य है जहां
राम ने भी पूजा की थी।
मानवता का रक्षा व्रत ही श्रृषियों
की परंपरा है।

आज सुगम है इनका दर्शन
तोड़ी जा चुकी हैं प्राचीर की सरहदें
सभी सीमाओं से मुक्त हैं अक्षय
जटाएं शिव की प्रतीति में
आनंदित हैं।

लोग परिक्रमा करते हुए
ना जाने क्या-क्या मांग रहे हैं?
अक्षतों को चुगते निर्भय पक्षी
मांग रहे हैं लोगों का साथ।

□□□

आस्था का महाकुंभ

सदियों से बहती है धार गंगा तेरा अनुपम है प्यार।
आए हैं लोग तेरे द्वार करूणा का रूप तू उदार।

कोई मनौती में मांग रहा काया।
मोती मकान कोई मांग रहा माया।

देती है तू छप्पर फार गंगा माई खुशियों का द्वार।

आए हैं लोग--------

सबको निरोग मिले घर में अनाज हो।
सबकी ही जोड़ी बने सबको ही काज हो।

आना मां करके श्रृंगार भोर से ही करते पुकार।

आए हैं लोग---------

चिड़िया को दाना दिए मछली को आटा।
सूरज को अर्घ्य दिए दीप औ बताशा।

केवट मनाए जय जयकार, नाव चली बीच
मझधार।

आए हैं लोग------

□□□

महाकुंभ की गंगा

श्रृषि मुनि नागा साधु सब करने चले नहान।
कण कण में त्रिदेव बसे यह तीरथराज महान।

सजा है महाकुंभ का अभियान -------

लहर लहर चलती है गंगा
पहर पहर तपती है गंगा।
हरने को पीड़ा जन जन की
डगर डगर कहती है गंगा।

कर्मवेदी पर आहुत करते रहना जीवन दान।

सजा है महाकुंभ अभियान -------

शहर शहर रचती है गंगा।
हहर हहर जपती है गंगा।
शिव की जटा जूट से निकली
चंवर चंवर सजती है गंगा।

यही मानवता की पहचान गूंजता भारत का
यशगान।

सजा है महाकुंभ अभियान-------

अमर अमर रटती है गंगा।
कहर कहर हरती है गंगा।
भगीरथ के तप से निकली
ठहर ठहर बहती है गंगा।

संगम की पावन धरती पर हुआ शंख अह्वान।

सजा है महाकुंभ अभियान ------

□□□

झूंसी से प्रयागराज

गंगा की आस्था बह रही है
झूंसी के चारो ओर,
जैसे लाए थे भगीरथ
वैसे भक्तों ने गंगा को झूंसी बना दिया।
नहीं है अब वह कोई स्टेशन
गंगा के उस पार भी तो गंगा हैं।

लाखों लोग की आस्था
उस पार भी बह रही है लहरों की तरह।
महिलाएँ आंचल भर रही हैं गंगा का
फूल, पत्ते, अक्षत, सिंदुर से
लोटे का जल सुगंधित है स्वास्तिक के बेल बूटे उग आए हैं।
बसंत से चहुंओर
खेतों में खड़ी फसलें नमन कर रही हैं।
गंगा का परिवार जानता है कितनी ही भाषाएं।

मुट्ठीभर मिट्टी लिए लोग करोड़पति बने जा रहे हैं।
न जाने क्या मांगते हाथ उठाए लोग
सम्पन्न हैं झूंसी को प्रणम्य बना कर।

□□□

फाफामऊ पार करते हुए

सामान रखें जा रहे हैं,
झोले, गठरी, थैलों में
खाने को ठेकुआ, निमकी
दान के लिए धान, चावल, गेहूँ, चूड़ा, फरूहा।
थोड़ा सा कच्चा और थोड़ा भूजा हुआ चूड़ा।
गुड़ की ढेली और लोटा-ग्लास
आलू नये वाले।

ट्राली में लादा जा रहा है पुआल
उपर सतरंगी दरी बिछी है।
बच्चे उन पर कूद रहे हैं,
मानो उन्हें ही जाना है कहीं

दादी जोर से चिल्लाते हुए आईं
भाई, गोइठा जरूर रख लेना
खाना बनाने से तापने तक काम देगा।
दादा बोले लंगर चल रहे हैं
वहीं चलेंगे।
तुमको कुछ और भी आता है
तीरथ में जाकर भी मांगने की सोच रहे हो?
घर के सभी लोग उनकी लड़ाई की पुरानी परंपरा पर
हंस पड़े।

रोते हुए बच्चे उतारे गये
खिलौने, कपड़े, मूर्ति, लाने का
वादा करते हुए।

ट्राली चल पड़ी
सबने हाथ जोड़कर सूर्य को प्रणाम किया।

तीजहर को रेलवे लाइन पार करते हुए लोगों ने
बताया फाफामऊ आ गए।
सबने जयकारा लगाया बोल गंगा माई की जय।
बोल प्रयागराज की जय
बोल तीरथराज की जय
बोल महाकुंभ नहान की जय।

दादी गाना शुरू की--
गंगा माई हम भी हैं तेरे परिवार
हमारी भी अरज सुनो।

□□□

गंगा की अदालत में

आज मौनी अमावस पर
लोग मांग रहे हैं अनेक वरदान
पितरों को प्रसन्न करते लोग
गंगा-संवाद के माध्यम से
खोल रहे हैं खुले-अनखुले प्रसंग

लोगों से सताए गए लोग
जमीन हड़पते भाई,
भगाई गई बेदखल विधवाएं
पढ़ाई न पूरी कर पाने की व्यथा वाले युवक
नौकरी में ठगे गए लोग।

खाता खतम करने वाले मोबाइली
साजिशों से रोते लोग
करोना में मरे परिजनों की वेदना
क्वारी लड़कियों का बोझ
जिंदगी से परेशान, खेतों की फरियाद।

बूढ़ी गाय की व्यथा सब कुछ
सुनाया जा रहा है--
आज गंगा की अदालत में
आज सब का फैसला होगा।
सच और झूठ सब देखेगी मां।

जितना विश्वास अदालतों पर नहीं
उससे अधिक गंगा पर है।

जितने लोग उतनी कथाएं
जीवितों से लेकर मृत लोगों की
वेदना निस्तारण करती गंगा।
महाकुंभ की महारानी।

□□□

महाकुंभ से लौटे लोग

महाकुंभ से लौट रहे हैं लोग
कर रहे हैं स्वागत गांव के युवा, बच्चे
गावों में कथाएं सुनी जा रही है।
घर-घर सुखाई जा रही है पीली धोतियां
बांटे जा रहे हैं प्रसाद, माला, गंगाजल।

कथा सुनने की चल रहीं हैं तैयारियाँ
आंगन में बनाई जा रही है रंगोली
वेदी के चौकी पर पीला वस्त्र ,
कलश, आम का पल्लो रखा गया है।
रंगे जा रहे हैं स्त्रियों के पैर
सज रहीं हैं बहुरियां।

दूर तक महक रही है पंजीरी की खुश्बू।
गीतों में महिमा है गंगा की
तीरथराज की
यमुना और सरस्वती की।
बताया जा रहा है दान का महत्व
लोग सीखे गये उपदेशों की कर रहे हैं चर्चा।

बच्चे झोली में गेंदा और गुलदाऊदी के फूल लिए
लौट रहे हैं आंगन की ओर।
तोरण से सजा है दुआर
फलों को धोया, काटा, सजाया जा रहा है।
परात के लिए हो रहा है हल्ला।

छत पर काटी सब्जियों को
पहुंचाया जा रहा है कड़ाहे तक
बच्चियाँ पूड़ी बेलने जुटी
मेवा काटकर अलग रखा है
नारियल छीला जा रहा है
कलश तैयार है--

तुलसी हर पात्र में रखी गईं
कुंभ से लाए गंगाजल की पूजा में
सभी शामिल हुए।
बाहर डुगडुग्गी और भीतर बज रहे हैं शंख।
बच्चे बंदूक, गुब्बारा, मुखौटा लगाए खुश हैं।
बेटियां माला, झुमका हेयरबैंड का बंटवारा करती दिख रही हैं।
महाकुंभ से लौटा है गांव।

□□□

भरद्वाज आश्रम

तीरथराज के भारद्वाज आश्रम में
इन दिनों बहुत भीड़ है।
टेकड़ी पर चढ़ते लोग
झुकना सीख रहे हैं।
श्रृषि-मुनियों की गाथा सुनाई जा रही हैं।

ज्ञान का विस्तार केंद्र है यह आश्रम
देश के कोने-कोने से ज्ञानी यहाँ
भाष्य सीखने आते।
भाषाओं से लेकर सदाचार तक
सिखाया जाता।
व्याकरण पर बहुत जोर दिया जाता।
शारीरिक शुद्धि का हर मंत्र सिद्ध होता।

विद्या से दूर होते भेदभाव
विनय की प्रतीति होती।
मुक्ति की युक्ति सिखाई जाती
विकारों से रहित जीवन का सूत्र उचारा जाता।
मानव-कल्याण की युक्तियों की आहुतियां दी जातीं।
प्रकृति पर आधारित चिकित्सा का नेतृत्व होता।

विद्वानों की सभाओं में
दिनचर्या को बांधा जाता
सूत्रों को केवल पढ़ा या समझा नहीं जाता।
उतारा जाता जीवन में
कथाओं की विवेचना होती
घटनाओं की समीक्षा होती
असफलता के कारणों पर विमर्श होते।

जीवन किसी के लिए नहीं थी इकलौती सम्पत्ति।
उससे प्रभावित है समाज, वर्ग, क्षेत्र
कुशलता अवसाद में आनंद की खोज है।
जीवों पर करूणा की पुनश्चर्या
निरंतर संकल्पित हैं यहाँ
ये भारद्वाज आश्रम है।

□□□

हिंजडों की दुवाएं

मेले में घर-परिवार के साथ
मांगलिक संस्कार कराते हुए
लोगों के पास जुटती हैं हिंजडों की टोलियां।
मांगते हुए दुवाएं गाती हैं गीत

किसी के हाथ में ढोलक
तो कोई ताली पीट कर सुर मिला रहा है।
नहीं है नाच में कोई कसर
गंगा की यशोगाथा अनुगूंजित है।
मांग-सोहाग से लेकर
ललना और परिवार की दुआ मांगती ये समुदाय।

रंग-बिरंगी साड़ियों में
आंखों में काजल, झुमका,
भर हाथ की चूड़ियों में छनमनाती
पायल की घुघंरूओं में छनछनाती
अपनी केश-सज्जा किए अलग-अलग समूहों में गतिशील
ना जाने कितने गीतों पर
थिरकता नजर आ रहा है।
लोग इन्हें भी दे रहे हैं।

मुंडन, जनेऊ, गोदभराई, कर्ण छेदन से लेकर
पिंडदान तक इनकी साझेदारी है।
इन पर भी द्रवित हैं गंगा।

□□□

निशान का जुलूस

आस्था का विज्ञान भी विचित्र है।
बौद्धिकता से नहीं जाने वाला
हृदय का आद्र भाव से संचारित
अभिन्न और आत्मीय संवाद जिसे
केवल आसक्ति आश्रितों द्वारा ही
अनुभूति किया जा सकता है।

महाकुंभ का विलक्षण समर्पण निशान यहाँ ध्वजा को कहते हैं
संगम तट पर बसे बड़े हनुमान जी
वहाँ के ईष्ट हैं।
महाकुंभ के नियंत्रक और स्थाई देवता
उनके बिना कुछ भी संभव नहीं।

बरसात में प्रत्येक वर्ष गंगा
उन्हें नहलाने आती हैं बाढ़ का बहाना लेकर।
धीरे-धीरे बढ़ता जल स्तर घेर लेता है परिवेश।

लोगों का आना-जाना कम होता जाता है।
मंदिर की ओर बढ़ता जल
लोगों को आशंकाओं से व्यथित करता है।
पूजन, आरती, श्रृंगार, भोग सब अव्यवस्थित।
तट की गंगा आरती तो बिलकुल बंद।
कोई नहीं आ पाता
बहुत एकांत होता है।

तब मां बढ़ते हुए सीढियों तक
आती हैं और हरहरा कर
नीचे आती हैं लेटे हुए विग्रह के पास।
सब कुछ जलमग्न फूल, तुलसी दल
सब समेटे कुछ ही देर में गंगा
अपने तटों में समा जाती हैं
अब लोगों का आना-जाना आरंभ हो जाता है।

यह प्रतिवर्ष होता है और
इसे बहुत शुभ सगुन मानते हैं।
धन-धान्य, राजी-खुशी, मांगलिक
होता है यह प्राकृतिक मिलन। इसमें देर होते देख
लोग कुशंकाओं से भर जाते हैं।

इसी मंदिर में ट्रक, ट्रैकटर, ट्राली से
आस्था का समूह भी उमड़ता है हर रोज।
विशाल लाल निशान लिए
नाचते-गाते।
गंगा किनारे इसकी पूजा कर
मंदिर के द्वार पर स्थापित
ये निशान जाने कितनी मनौतियों का पर्याय हैं।

लोगों को हर विषम परिस्थितयों
में इन्हीं की याद आती है।
और वे पार भी होते हैं।
चिकित्सा, शिक्षा, नौकरी, विवाह, प्रोन्नति, वेतन, मकान,
मुकदमे में जीत सब यहीं मांगा जाता है।

हर वर्ग, जाति, समाज की यहाँ
होती है सुनवाई।
यह आस्था ही विज्ञान है
जिसमें बौद्धिक प्रयोग नहीं।
फलीभूत होती हैं सीधे-सच्चे
निष्कपट मन से मांगी सार्थक दुआएं।

मंगलवार और शनिवार को
बारह महीने सुसज्जित भीड़ की
करूणा से अभिसिक्त होते हैं।
निशान सफलता का प्रतीक है।
जिसे पाने के लिए
केवल कर्म से ही नहीं
कुछ पराभूत शक्तियों का वरदान भी आवश्यक है।

□□□

संगम की स्त्रियाँ

सभी के स्नान की विधियाँ
चल रहीं हैं डुबकियाँ उतान होती
झाड़ती हैं बालों को।

श्रृषियों की ध्यान, माला, संध्या
योगियों की योगमुद्राएं
संतों का सत्संग-भजन
यज्ञकों का हवन
आहुतियों का बिंबसार
गीता-रामायण के पाठ
सिद्ध, नाथों और नागों की अर्चनाएं जारी हैं।
सभी श्रेष्ठ और वरेण्य मान कर
उसका महिमामंडन कर रहे हैं।

पुरूष अपने ढंग से मना रहे हैं।
सबसे विलग साधना स्त्रियों की
उनके लिए वे पाने की लालसा वाली
उपलब्धि न होकर
घर आई साक्षात् अपरिमित मां हैं।
वे भर रहीं हैं खोंइछा
सात बार अंजुरी से देती हैं
चावल, हल्दी, दूब, सुपारी और द्रव्य साड़ी पर।

जिन्हें लोग खोज रहे हैं,
उन्हें वो पा चुकी हैं।

□□□

विश्वास की पराकाष्ठा

दुनिया के किसी देश में
नहान को उत्सव या त्योहार बनाने की क्षमता नहीं।
क्यों कि वहाँ गंगा नहीं है।

विश्व का सबसे पवित्र जल
जिसमें कभी कोई अनिष्ट नहीं
एक-एक बूंद जीवनदायी
कायाकल्प करने वाला स्पर्श
असाध्य रोगों का निदान
कुष्ठ से कैंसर तक में असरकारी
युगों से अपनी उपादेयता का जल
निश्छल ही सब पर लुटाती।

आध्यात्म, आरोग्य, आनंद की प्रदाता त्रिवेणी।
यहाँ एक बार भी आना श्रेयस्कर है।
आदमी चाहता है जो कुछ
यहाँ सभी अभिष्ट सिद्ध होते हैं।
जल का विदृष्ट और विराट स्वरूप
जो मां है इस धरती का
आदि-अंत

महाकुंभ में विराट मन का दर्शन
आह्लादित कर रहा है सबको।
कभी तैरते बत्तखों को देखिए
उनकी मुदिता में विहंसती गंगा।

□□□

गंगा से बतियाने

आपने गंगा से बात की है--
लोगों को सुनती है एक नदी
और लोगों की सुनती भी है।

पहले जीवन कठिन था ,
रोजगार के लिए अधिकतर कोलकाता या पूरब गए पुरूष
वर्षों तक लौट नहीं पाते
अर्थ की विकराल व्यवस्था में
और शहर की लचीली जिंदगी में
उनका नहीं आ पाना उम्मीद के
मनीप्लांट के सूखने जैसा था।

स्त्रियाँ गांवों में अपनी दिनचर्या बिताती।
धन, सहुलियत, जिम्मेदारियों में
उनका जीवन खेत-खलिहानों से लेकर
खूंटा, नाद, चारा पर निछावर हो जाता।
चुल्हे को लीपते-पोतते नम आंखें
अक्सर छलक आतीं।

अचानक छत पर रखे गोइठा को
नीचे लाने की सुधि आती।
बोतल के ढेबरी सी जिंदगी
जल्द ही किरासिन की तरह सूख जाती।

माघ के नहान में जाते यात्रियों से
वह केवल अक्षत भेज कर
यह कहलवाती ---
हे मां गंगा यदि हम जोड़ी से आपका दर्शन करना चाहते हैं।
हमारे स्वामी का मिलन सुभग हो।
हमारे झोले में रखी पियरी आपको अर्पित होगी।

कितने बिछडों को मिलाती है मां।

□□□

महाकुंभ की त्रिवेणी

नहीं है यह केवल तीन नदियों का संगम।
इसके अन्वय और भी हैं-
जीवन की तीन पराभौतिक तत्वों का मिलन है ,
ज्ञान की गंगा ही हरती है हमारी जड़ता।
बोधचक्षु से सृष्टि का अवलोकन
बुद्धिपरक चिंतन और अनावरण के रहस्य की शालीनता
बौद्धिकता से सृष्टि निरूपण है गंगा।

भावमय जगत की अवतारणी यमुना का विकास ही लक्ष्य है
इसकी शून्यता अवसाद और अरसता को आकार देती
केवल जीव का होना ही उसे सजीव नहीं बनाता।
संवेदनशीलता और संवेगात्मक अनुशीलन की धार
विशालता से हृदय का अवमूल्यन
बीज में समष्टि को संजोए
सार्थक अवनी का पर्याय है यमुना।

मन की सहज अवस्था
जो अदृश्य सतत स्थिर और गतिशील भी
ऐसे वैराग्य की सरस्वती
जिसमें लिप्सा नहीं, अभिप्सा नहीं
कालजयी मनोमुक्ति का अनहद और अशेष का शेष

इन तीनों की संधि और
व्युत्पत्ति का संगम हमारी चेतना का महाकुंभ है।

□□□

घाटों को खोजती नदी

नहीं है कोई घाट संगम की गंगा पर
जैसे विमुक्त मन नहीं बंधता
किसी सरहद से----
वैसे ही संगम की गंगा उन्मुक्त है
बिलकुल मौलिक नदी की तरह।

अभी उसने किसी आचार संहिता का
वरण नहीं किया है।
उसके विशाल पाट ही हैं घाट
जहाँ लोगों को आना पड़ता है।
हर हर बार, हर साल
एक नये दस्तावेज की गंगा
तैयार रहती है।

कभी पास तो कभी दूर
रेतों पर चलते-तपते
उसके भूछोड़ भागों से जुड़ते
न जाने किस उज्जवलता की तलाश है गंगा।
बहुत ऊंचे बंधे पर से देखती लोगों की आंखें।

सूरज की किरणों में सोन्हाई
झिलमिल -झिलमिल रोशनाई में
ढलान से ढुलगते पांवों को ऊर्जान बनाने वाली
कुछ दूर और के एहसासों के में
दूर तक ले जाती गंगा।

जब मिलती है धधाकर तो
तो सारे अर्थ, संदर्भ, व्याख्या, विश्लेषण विलीन हो जाते हैं।
गंगा तुम ऐसे मिलती हो-----

□□□

गंगा का रंगमंच

गंगा का रंगमंच सबसे प्राचीन
और अद्यतन संस्करण है।
न जाने कब से संपूर्ण लोक को समेटे
विस्तृत अवलोकन में शामिल
सभी के अथाह सुख-दुख के साक्षी।

कुछ नागरिक नवजात को लिए
दूध की धार से सींच रहे हैं
श्वेतधारिणी धारा को।
साड़ियों को जोड़कर नापा जा रहा है दोनों पाट।
इस पार से उस पार तक
बांधीं जा रही हैं फूलों की लड़ियां
नवजात के लिए कहा जा रहा है--
हे पतितपावनी गंगा!
हे भुवन भास्कर!
हे दानतीर्थ तीरथराज!
हे श्रेष्ठ धरांश त्रिवेणी!
यह शिशु आपका है -----
इसके जीवन को समुन्नत बना कर
परमार्थिक बनाएं।

भगीरथ के तप से निकली
पुरखों को तारती
निरंतर प्रवाह को संकल्पित

संगम से दिखा रही है
मनुष्य के सोलहों संस्कार
ढोल-नगाड़ा, ताशा बजाते लोग
पूजन की थाल, मिठाई, नव वर-वधू लिए
आए हैं मौर सेरवाने
गीत गाया जा रहा है---
ननद-भौजाईयों की छींटा-कसी
नोंक-झोंक, मान-मनुहार
जारी है।
केवट की अपनी पेशकश है
लुटाए हुए पैसे बीन रहे हैं----
मल्लाहों के बालक

सिन्होरा से मांग बहोरती स्त्रियाँ
सुहाग की अखंडता पर दृढ़ हैं।
लोग लौट रहे हैं गाते-बजाते
उधर से दूसरा समूह चला आ रहा है,,
मुंडन के गीतों से आप्लावित है तट
गर्भ के मूढ़ केश प्रवाहित हैं
अब बालक सौंदर्य का विन्यास लेगा।
जनेऊ की विधियों को अपनाते
पलाश-दंड लिए बरूआ
ज्ञान की नगरी काशी जाने को उद्धत
परिजनों को जोगी बन जाने का संशय
मना रहा है घर लौटने को

विधवाओं के सिन्होरा,मंगलसूत, साडियां,
चूडियां, बिछिया, बहाई जा रही है।

केश-उच्चाटन से विह्वल विलखती स्त्रियाँ
करती हैं धैर्य, साहस, सुदृढ़ता की याचना।
बहुत दुखी है गंगा
देती है अपना नाम।

रोगियों को नित्य ही लाया जाता है इन तटों पर।
सकारात्मक सोच से पुसती
उसके हृदय में बसे मनोमालिन्य को
वैसे ही भगा देती हैं जैसे
कोयल के कूकते ही
बोल उठते हैं बांसवन।

दक्षिण मुँह किए, सिर छिलवाए कटहल के पत्तों पर
चावल और उड़द के दालों से
पिंडदान करते परिजन
पितरों की मुक्ति मांगता समुदाय
कलशों में लाए गए अस्थियों को
दूर तक देखता है प्रवाहित होते
बेहद उदास, किंतु संतुष्ट मन से
करते है विविध दान।

देश के कोने-कोने से
आईं आस्थाएं
मनौतियों का पर्व मनातीं
दुहाई देते लौट रही हैं महाकुंभ के रंगमंच से।

□□□

महाकुंभ में

आए संगम नहाने सब लोग
गंगा माईया विनती सुनो।

पूरब से आए पश्चिम से आए।
उत्तर से आए दक्षिण से आए।
नर -नारी सब देव मनाए।
महाकुंभ में जप, तप, योग।

गंगा माईया विनती सुनो। ------

ब्रह्मा, विष्णु, महेश जी आए।
देव-दनुज सब मंगल गाए।
बूढ़े -बच्चों सभी मगन हैं।
अब जय जय की हो जयघोष।

गंगा माईया विनती सुनो--------

किन्नर ,यक्ष, गंधर्व पधारे।
वेदमंत्र पढ़, आरती उतारे।
चले छोड़ के खेत-बखारी
सिर पे गठरी नयन हैं विभोर।

गंगा माईया----------

□□□

नक्षत्रों का शाही नहान

महाकुंभ में नक्षत्रों का भी होता है आगमन
सभी सृष्टि के अवगाहन में करते हैं बैठके
उनके बिना अधूरी है यह सृष्टि
सबके नियंत्रण में सबकी भूमिका
यही है अंतरिक्ष विज्ञान।

इनके शाही स्नान में
ग्रहाधिपति सूर्य ही हैं सबसे प्रमुख
उनके सात घोड़ों वाले रथ पर
सजे रहते हैं छत्र और झालर
अरूण का सारथी होना लुभाता है।
लाल ध्वजाओं से सजे मार्ग
सोने के कलशों से, पुष्प-वर्षा करते विमान
सजीं द्वार-देहरियां, कलशों पर कलश
अस्त्र-शस्त्र से सजे योद्धा चल रहे हैं अधिपति राजा के साथ।

गुरू सदा करते है समुन्नत राजा को
वैचारिक मंत्रणा से
धर्म पथ पर चलने का मार्ग-प्रशस्त करते।
कभी कोई संदेह, द्विविधा, अविमर्श की स्थितियों को
संभालते।
पीले वस्त्रों से देदीप्यमान
माला, कमंडल, चंदन लगाए

मंत्रों के साथ चल रहे हैं हाथियों पर जयघोष के साथ।
उनकी ध्वजाएं लहरा रही हैं आकाश में।
पुष्पों से गुंफित मार्ग प्रशस्त है दैवीय संकल्पनाओं के लिए।

सेनाध्यक्ष मंगल का उच्च ओहदा
उनकी आवश्यकताओं का बता रहा है महत्व।
सुरक्षा हर हाल में होनी चाहिए जीवंत
शौर्य और विजय की लाल स्वर्णिम ध्वजाओं के साथ
हो रहा है शंखनाद
सधी-बंधी काया में चौकस नयनों से
साथ कदमों के साथ बढ़ रहा है काफिला मंगल का।
सोना और तांबे के ढाल-कवच
जगमगा रहे हैं महाकुंभ में।
नगाड़ा और तुरही आगे है सबसे
दृढ़ संकल्पी वीरों का सामना करने का नहीं हि किसी में
साहस

बुद्ध और सूर्य की युति जैसे
उत्पन्न करती है बुद्धादित्य योग
वैसे ही यहाँ हरे रंगों वाले वाहनों पर
बैठे हैं युवा बुद्ध समस्त कौशलों को अपनाए।
साथ चल रहा है कुशल वक्ताओं
निपुण कलाकारों,
गणितज्ञों, संगीतज्ञों, गायकों, वादकों नर्तकों का समूह
अपने उत्कृष्ट प्रदर्शन के साथ
उन्नत है मस्तक

धरती की समस्त हरियाली के
प्रतीक हैं।
इनका आधिपत्य स्वीकार्य करते हुए
बढ़ता है ज्ञान का परिवेश।

चंद्र का प्रवेश हो चुका है--
हिरनों की चौकड़ी जारी है
घटते-बढ़ते इनका स्वरूप आज
अपनी संपूर्णता में आह्लादित है।
मोतियों की माला, शंख, मुकुट
पहने दीपित है उनका मुखमंडल
श्वेत की शीतलता में शांतिदूत सा
अपलक त्रिवेणी को निहारता
नयनाचमन से अभिभूत
लुटा रहा है करूणा, ममता, दया
सभी का चहेता
चल रहा है शान से।

शुक्र के बिना तो कुछ संभव ही नहीं
जीवन के हर उछाह का पर्याय
हर रंग को रंग बनाने में तल्लीन
एक खूबसूरत देवता
जिसके ज्ञान से परिपूर्ण है धरती
आज अपनी सात्विक वृत्तियों के साथ
सौन्दर्य बिखेरता आलोकमय है।
समस्त जीवों का आधारभूत तत्व

अभिरूचि, अनुराग और प्रेम का प्रतीक।
चमकीले वस्त्रों में परिभाषित
दिगंत में व्याप्त है।

ग्रहों की शोभा यात्रा में आकर्षण हैं शनि
नीले रंग के वलयधारी वस्त्रों, मुकुट, मेखला, आभूषणों में नक्षत्र
का राजकुमार
अपनी सवारी से उतरा है-
करने के लिए न्याय का आदेश
आज इस सूर्यपुत्र के राशिगृह में
पधारे हैं आदित्य और
उनके भी आशीष से आप्लावित शनि
कोई पूजा नहीं चाहता
बस चाहता है-----सभी अपने मानवीय मूल्यों का करें अनुपालन
स्त्रियों के लिए सदा सम्मान
वृद्धों का भूल कर भी न करें अपमान।
हर तरह के अवैध कृत्यों से रहें दूर
न्यायमूर्ति बस न्याय करता है--
उसमें सगा-संबंधी नहीं चलता
अपने कर्म के विजेता बनो
दूसरे कंधे पाप नहीं ढोया जाता।

गंगा के आंगन में मानव-कल्याणार्थ सभी पधारे हैं।
जगाने के लिए आदमी के भीतर का आदमी।

□□□

महाकुंभ में पक्षी

महाकुंभ में विदेशों से आए पक्षी
पहले से भी निर्भीक होकर
लगा रहे हैं दिन भर डुबकियाँ।

उनके लिए गंगा न कथा न पुराण
बस कौतुक है जल का
जिसके किनारे करोड़ो लोग
कर रहे हैं स्नान।
एक ही जल में हर जाति, धर्म, सम्प्रदाय, आयु, लिंग,
वर्ण और काया समाहित होकर
सतत विनयशील है।

पक्षी बिना केवटाई दिए
नावों पर भी घूम रहे हैं--
इधर-उधर, तीर-तीर
बने हुए हैं आकर्षण केंद्र
किनारे से लोग दे रहे हैं --
उनके पसंद की चीजें
बेसन की नमकीन और भुजिया लपक कर ले रहे हैं।

बदली हुई है उनकी भी जीवन-शैली
नहीं करते मछलियों का शिकार
महाकुंभ में शाकाहारी बन
कमा रहे हैं पुण्य।
लहरों से होड़ लगा कर उड़ना
फिर धारा पर बैठना

डूबना, उतराना, सिर डुबा कर
आगे निकल जाना।
इतनी सारी कलाबाजियां
किसे रिझा रहे हैं---????

कभी गंगा तो कभी यमुना
तो कभी संगम में नहाना।
कभी किले की दीवारों तो
कभी मंदिर के गुम्बदों पर
सुखा रहे हैं अपने श्वेत धवल पंख

लोग इन्हें खिला कर
अपना शनि उतार रहे हैं-
इनको किसी ग्रह का डर नहीं
बस गंगा नहा रहे हैं-------

□□□

परंपराओं की पुनरावृत्ति

महाकुंभ में केवल नहाया ही नहीं जाता।
हमारे कर्म परमार्थी होते हैं
हम अपने से पहले
सोचते हैं---औरों की
लोग नहलवाने भी ले जाते हैं--
परिजन, पुरजन, गुरूजन और नाते-रिश्तेदारों को।

सन् 2013 के महाकुंभ में
असम से बुलाए गए हम लोग
अपने अध्यापक शिष्यों के साथ
जोग-जुगत लगा कर चल दिए
त्रिवेणी की ओर------
भीड़ ना हो तो भी कुंभ सुहाता नहीं
भीड़ हो तो तेज चला जाता नहीं
पर यही पग पग चलना समरसता है।
सब बढ़ रहे हैं सिलसिलेवार

थकान इसलिए भी नहीं कि
दुकानों की रौनकों में खोई आंखें
कभी बर्तन, पूजा के सामान, कपड़े, ऊनी कपड़े, चूड़ी, मोती माला,
शंख, बताशा, गुब्बारा, झुनझुना, चरखी, क्लीप, जूड़ा, जूता, मोजा,
फूलगेंदा में ही खोया रहता है
केवल पैर चलते हैं।

ऐसा लगता है रंग देहधारी बन
उतर आए हैं संगम पर
एक से एक चटकीले और सजीले।
कुंभ के आखिरी कुछ दिन
ठंड तो थी पर बेदमदार।
लोग नहा रहे हैं और निकल रहे हैं।
हम भी विधान के साथ अनेक डुबकियाँ लगाते रहे।
न जल रूका न लहरें।
यही प्रवाह तो जीवन है।

किनारे आकर भी पूजन अर्चन
फिर दान की विधियाँ होती रहीं संपन्न
त्यागना ही है यहाँ का मूलमंत्र
कपड़े से कलेवर तक, अनावृत्ति का तीर्थ है प्रयागराज।
विलीन हो रहे थे कृत्रिम कलुषित आवरण संगम पर।
मौलिक स्वरूप का निखार ही नहान है।

लौट पड़े पांव
उनके घरों की ओर
सीढ़ियों से ही हमारे गीले
कपड़ो के थैले रखा दिए गए
गर्म पानी से पांव धोना अतीव
सुखकर लगा।
चलने की पीड़ा से मुक्त होते रहे
परंपरानुसार होता रहा सब कुछ

नहान से आए लोगों को प्रणाम भी
नहान का पुण्य देता है।

सब कुछ विधिवत् हो रहा था।
गर्म अदरक की चाय
सारी थकान हर ले गई।
न जाने कितने तरह के नाश्ते
और मिठाईयों से कमरा महक उठा।

भोजन भी बन रहा था
हमारे कपड़े भी धो कर डाले जा चुके थे।
पैरों को गर्म हवा की सेंक दी गई।

उस दिन को बीते वर्षों हो गए
पर हम अक्सर उस महाकुंभ में नहाते हैं।
निवेदिता जी ने महाकुंभ की सभी
लौकिक परम्पराएं पुष्ट की
कुछ जीत और कुछ चुरा भी लिया।

उनकी सपरिवार यादें सदा युवा रहेंगी।
क्यों कि बसंत कभी बूढ़ा नहीं होता।

□□□

महाकुंभ से लौटी शालिनी फूआ

घरों की देहरियां महक रही हैं
धूप और गुग्गुल से।
तरह-तरह की अगरबत्तियां आकाश छूना चाहती हैं।
लौट रहे हैं महाकुंभ के कल्पवासी
लौट आईं शालिनी फूआ।

बरामदे पर रखी चौकी पर बैठी
सबको आंख भर देखती और आशीषतीं
पूछ रहीं हैं सबका हाल।
उनके पांव धोती बहुएं निहाल हो रही हैं।
मानो उन्हें ही महाकुंभ का फल मिल गया हो।
गाय, बछरू, खेत-खलिहान,
अदरक, कोहड़ा, शकरकंद सब कुछ के बारे में जानना चाह रही हैं।

मंगाती है बोरे वाली गठरी
सबसे पहले गंगाजल देकर घर में छींटने को कहती हैं।
फरूही और लायचीदाना देकर समूचे गांव में बंटवाने को कहती हैं।
तभी पोता पास आकर अपना उपहार पूछता है।
उसे और सभी लड़कों को बजरंगबली को चढ़ाया सूत माला देती हैं।
बहु-बेटियों को गंगा माई को चढ़ाया सिंदूर
पंडित जी को जनेऊ, खड़ाऊ
लड़कियों को रीबन, क्लीप, कड़ा, हेयर बैंड,
आलता आंगन के दियरखे पर रखवा दिया गया।

तांबे के नागवासुकी छिपा कर खेतों में गाड़े गए।
गायों को घंटी और माला
चढ़े सूखे फूल घर के चारों ओर बिखेरे गए।
फूफा के आते ही चुनौटी देकर हंसने लगी।
भैरव बाबा के टीके से गाड़ियों पर बनाएं जा रहे थे स्वास्तिक के निशान।

घर में उनके स्वागत में अनेक तरह के पकवान बने थे।
फूआ फलों का झोला खोली और बोली----
आज एकदशी है, मैं संकल्प ले आई हूँ।
सब लोग भोजन करो।

पोते ने कहा--दादी ! आपका वीडियो बनाएं।
'कैसा रहा कुंभ--??? '
सब बहुत अच्छा रहा।
जहाँ भावना उच्च हो, कोई कष्ट नहीं।
वहाँ तो आदमी तप करने ही जाता है।
वरना घर में क्या नहीं है?
दुहाई गंगा माई।

□□□

गंगा में खोई मां

साल तो याद नहीं
पर हम छोटे थे--
मां को गंगा से बहुत लगाव था।
उनका मायका ही
प्रयागराज जिले में था यह भी एक वजह थी।
अब वह कौशांबी में चला गया।
मुझे याद है वो दूरदर्शन में भी कोई नदी देखतीं तो
जय गंगा मैया कहकर
हाथ जोड़ना नहीं भूलती।

एक महाकुंभ में मां गईं प्रयागराज
कीटगंज वाली मौसी के घर से
कुछ परिवारजनों के साथ
संगम पर किसी-किसी तरह
पहुंच गए सभी।

भीड़ न हो तो कुंभ कैसा-??
पैदल न चलना पड़े तो पुण्य कैसा-??
लोगों की चहल-पहल न हो तो
नहान कैसा-?
मल्लाह पहले से मुस्तैद थे।
संगम से नौका चली और
तट छूट गया।
केवल जल के सैलाब में
तैर रहीं थीं आस्था की लहरें।
जयकारों से दिग्दिगंत गूँज रहे थे।

बहुत विदुषी और धर्म को जीवन के स्तर पर जीने वाली मां
कभी पाखंड और ढोंग को नहीं अपनाईं।
उनको गंगा से सीधे जुड़ना आता था।
उनके आनंद की अपनी विधियाँ थीं।
देखा-देखी कुछ नहीं।

कुछ ही देर में नाव लौटी
गीले कपड़े इस पार बदलने थे।
बस दो कदम की दूरी पर
सब बिछड़ गए।
भीड़ इतनी की किसी को खोज पाना मुश्किल था।
संसाधन भी इतने नहीं थे
बस बची थी तो हिम्मत
ठंड से कांपती मां
गंगा की ओर देखती सूर्य को ताप रही थीं।

कुछ ही दूरी पर मचान से
पुलिस बंधुओं की दृष्टि पड़ी
वे लोग तुरंत आए और
सारी जानकरी ली गई।
पुलिस वाले की कोट मां काम आई।
चाय और जलपान भी आया।

उधर मन्नों मौसी घर जाने को
तैयार नहीं।
इधर गोपाल भाई सिर पकड़कर
विकल थे।
बार-बार यही कहते--' दुलहिन जी के बिना कैसे जाऐंगे

तमकुही-?? ‘
किसी को कुछ सूझ नहीं रहा था।

तीजहर हो गया।
भीड़ कम हुई
हलचलें थमीं।
नाविक पैसे गिनने में लगे थे।
पंडित जी सीधा समेट रहे थे।
सूर्यदेव लहरों पर हिचकोले खा रहे थे।

मां ने गोपाल भाई को पहचान लिया।
आवाज लगाई।
पुलिस का दल दौड़ पड़ा।
सबका मिलन हो गया।
संगम चरितार्थ हुआ।

मां जब तक रहीं इस घटना में
उस पुलिस वाले की सहृदया को याद करते।
अनेक बार इस प्रसंग को सुनातीं।

तब घटनाएं घटनाएं हुआ करतीं थीं।
उन पर राजनीतिक रंग नहीं हुआ करते थे।

□□□

विवाह से पूर्व कन्याओं की गंगा पूजा

कन्याओं का जीवन नदी की तरह होता।
कुछ वर्ष इस पाट के साथ
फिर उस पाट पर चलीं जातीं हैं
और वही उनका अपना हो जाता है।
बीच की लहरें दोनों को
जोड़ती जरूर है पर-----

कन्याओं को विवाह के पूर्व
गंगा -स्नान कराया जाता है।
उनके क्वारे अंगों को मां देती हैं--
कंचन काया का आशीष।

क्वारी छवि का आखिरी स्वरूप
गंगा को अर्पित कर कन्याएँ
पुराने पंखों को संस्कारों सहित करती हैं प्रवाहित,

विधिवत् नहाती हैं दूसरे तट को निहारते।
यह तट छलना सा हो जाएगा
कभी नहीं सोचीं।
आज यहाँ उतारे कपड़े हो जाएंगे दान।
सिंदुर के लगते ही बंधते हैं दायित्वों के गांठ।
पूरा के पूरा किरदार ही
बदलता है इसी गंगा के तीरे।

जैसे प्रशिक्षण के बाद मनोबल से लैस होता है वीर योद्धा।
उसी तरह कन्याएँ अब सजग होती हैं-----
जीवन के हर क्षेत्र के दायित्वों से
बस इसी गंगा के तट पर।
रेत पर स्वंय का नाम लिख कर
प्रवाहित करती हैं।
नयी पदवी नये नाम
नये कर्तव्यों को सीखतीं हैं निभाना।
इसी गंगा की तरह गंगा के तट पर।
क्वारी कन्याएँ।

□□□

महाकुंभ में भाषाएं

महाकुंभ में नहा रही हैं भाषाएँ
लहरों पर तैरती फूलों ही
रंग- बिरंगे आशाओं की लहरें बन कर।
लहरों में नहा रहीं हैं लहरों सी भाषाएं।

हर प्रांत की भाषाएं पदयात्रा पर
निरंतर संकल्पित हैं
लक्ष्य तक प्रस्तुत होने को।
सभी एक- दूसरे को समझ रही हैं
सबके पड़ाव और बढ़ाव एक ही दिशा में हैं।

जयकारे में शामिल हैं भाषाएं
पताकाओं के रंग में उच्चारित
विलग- विलग पथों से आती
एक ही गंतव्य तक पहुंचने को आतुर
जल के निनाद पर ध्यान मग्न
जल और आकाश की दूरी तय करती
सशक्त वातायन का संधान हैं दिशाएं।

भाषाओं के वस्त्र में छपे हैं
लिपियों के अलग-अलग बेल- बूटे
जिनमें सत्यं शिवं और सुंदरता का सार्थक
आयोग विवेचित है।
हर भाषा की मुस्कान
उसकी अपनी पहचान है।

भाषाओं के वर्तुलाकार अर्घ्य
समर्पित हैं उस मानवता के नाम
जहाँ पहुंच कर सभी भाषाएं मौन हो जाती हैं।

□□□

नागवासुकी - महिमा

गंगा के किनारे प्रयागराज में नागवासुकी भी विराजमान हैं।
जो शिव के गले में विराजित
और समुद्र- मंथन की रस्सी बने।
इनके ही सहारे मथा गया
संपूर्ण चिंतन और दर्शन
जिसके अवगाहन से निकले
चौदह रत्न।

मंथन के बाद ऊष्मा और घर्षण से
व्यथित वासुकी
मां गंगा से शांति की याचना पर
यहीं प्रयागराज में विश्राम किए
यह प्राचीन मंदिर इसी कथा का
संचित और प्रमाणित परिकोष है।

अनेक वैपत्यिक योगों का निवारण
इनकी अर्चना से होते हैं शांत
कालसर्प दोष यहीं होता है शांत
पौराणिक महत्व और मान्यताओं का साक्षी
जिसे आतातायी भी ध्वंस नहीं कर पाए।

महाकुंभ का अप्रमेय स्थान
कालजयी शिव का वरण
उनके अभिषेक के अंग बिना
अधूरी है गंगा- गाथा
संतापों का समाहार समाए हुए
नागवासुकी तेरी जय हो।

□□□

समुद्र मंथन और अमृत

मन, संसार और अंतरिक्ष भी
नित्य निरंतर मंथनायुक्त है
जितनी गहराई और एकाग्रता से
हम डूबते- उतराते हैं।
विचारों के रत्न हमारे हिस्से में
आते हैं।

सभी रत्न यथायोग्य को प्राप्त हुए
अमृत के समय
देवताओं को अमृत
और दानवों को मदिरा वितरण
होता देख
राहु ने योजनाओं को भांप लिया
और छल से जा बैठा
देवताओं की पांत में
विष पान करते ही चक्र सुदर्शन से
विक्षत हुआ राहु दो हिस्सों में बंट गया।
राहु और केतु
मरा भी नहीं, अमर भी नहीं हुआ
आभास या छाया बन कर रह गया।

ग्रह तो नहीं पर ग्रसता है
सूर्य और चंद्रमा को कुछ देर
अपना बदला लेने के लिए।

राहु जो सिर है सोच सकता है
कर नहीं सकता।
केतु जो धड़ है पर सोचता नहीं
समुद्र मंथन की कथा
जीवन के सतत संघर्ष की
अविरल धारा है।

आदमी का संकल्प ही
उसे लक्ष्यों की प्राप्ति कराता है।
उज्ज्वल संकल्प ही
जीवन- मंथन की परिणति हैं।
राहु- केतु सी बाधाएं रोकने नहीं
धैर्य की परीक्षा के लिए आती हैं

परीक्षाओं से वे नहीं डरते
जो शौर्य की शक्ति से उतरते हैं
इस रंगशाला में।

□□□

आध्यात्मिक त्रिवेणी

एक त्रिवेणी हमारे भीतर भी है
जिसे योगी- यती संन्यासी साधते हैं।
स्वांस के दाहिने प्रवाह पिंगला
जिसे सूर्य से प्रभावित मानते हैं
जिससे हमारी ऊर्जा और ऊष्मा
संचारित होती है।
हमारे भीतर का तप- तेज
बल- पुरूषार्थ, ज्ञान -विज्ञान
चिंतन-मनन, लेखन- वाचन
वक्तृत्व और व्यक्तित्व का पोषक
अखंड सूर्य से संचालित
जीवन का आधार और पर्याय।
यही गंगा है-- ज्ञान की जटाओं
से निकली।
अकलुष, अक्लांत, अविरल, अमल।

स्वांस के बाएं स्वर इंगला को
चंद्र निर्धारित करता है।
यह शीतलता का प्रतीक है।
इसमें कल्पविधान और काव्य विधान को
पोषित किया जाता है।
शीतलता और सौम्यता के लक्ष्य
और ध्येय की प्रतिपूर्ति
करता हुआ।
विमलता और कांति का जनक

शांति के अप्रतिम संवाद को
निरूपित करती किरणें
जीवन की आवश्यक अध्याय
बन रंगती हैं - कोरे पृष्ठों को।
यही यमुना है निरंकुश अबाध।

इन दोनों के बीच बहती सुषुम्ना
जो कठिन साधना और संतुलन से
होती है प्रतिभाषित।
यह दिखती नहीं, पर रहती है अदृश्य
इसकी अनुभूति से सधते हैं
सभी स्वर।
सारी सिद्धियों को पोषित करने वाली।
रंध्र की अनखत अनहद समावेशी
सरस्वती यहीं बसती है।

यहीं निष्पंदन मौन हो जाते हैं।

□□□

संगम का विविध भक्तिकाल

तीरथराज प्रयाग में संगम केवल
तीन नदियों का ही नहीं।
इन नदियों में समाहित हैं--
अनेक कथाओं के सार
और अभिव्यंजित हैं अनेक काल

गंगा राम- भक्ति का पर्याय
राम के जीवन की उत्सर्गी कथाएं
इन्हीं गंगा के अभिमुखी होकर
बह रही हैं उस काल से
नित्य- निरंतर।

केवट, भरत, निषादराज
अयोध्यावासियों को सोता छोड़कर
राम का दक्षिण निकल जाना।
सेमल, शीशम और
पीपल के वृक्षों का प्रमाण।
श्रृंगवेरपुर की धरा पर जीवंत हैं।

श्रृंगी श्रृषि की तपस्या
सीता की मनौतियाँ
सीता का ग्रामवधूटियों के साथ परिहासिक वार्तालाप
भारद्वाज की तपस्या और कुलगुरूत्व

तुलसी का अमर लेखन
उत्तर से दक्षिण तक सचेतन वन- साम्राज्य
गंगा का अनुकूल आशीर्वाद
सब कुछ यहीं है।

कृष्ण भक्ति ने आध्यात्मिक वितान को जीवंत और सन्निकट बनाया
सरस, समरस और सरल बनाया
कथाएं लोकजीवन के निकट रहीं।
पूरब से पश्चिम तक फैलीं
बाल- कथाओं का वृहत्तर कोष
तामसी राज्य परिपालन का विरोध
धर्म- अधर्म में रिश्तों का धर्मानुशरण
ब्रज मंडल का मधुरिम परिवेश
हिंदी का समस्त कृष्ण- काल को उकेरती लीलाएं।
यही यमुना का संदेश
जो श्यामली और सुरम्यी, सुगम्य
विवेचना है भक्ति की।

सरस्वती अलोप रूप में विद्यमान है
जैसे निर्गुण पदों में व्यक्त हो
जीवन की नियमावलियां
ध्यान, योग, संयम- नियम को
समर्थवान बनातीं अदृश्य धाराएं
हमको हमसे ही परिमार्जित करातीं हैं।

ज्ञान का मार्ग सूक्ष्म और विरल
अनुभूतियों का आकार है।
कोई संस्कार की मोहताज नहीं
केवल समुज्ज्वलता का वरण
आंतरिक धरोहर का पुनर्जागरण
यही है सारस्वत- साधना ।

इन तीनों के तट का अवगाहन ही
संगम है।
मिलने के बाद सब एक हैं।
विलग नहीं किया जा सकता।
आवश्यकता केवल भक्ति की है
वही मूलतत्व है
इस अगम नदिया से तारने के लिए।

□□□

और वे गंगा हो जातीं

जब कभी याद करती हूँ बचपन
एक खूबसूरत सी लड़की
होती है मेरी आंखों
मासूम और कोमल।

हर सड़क परिचित
हर चौराहे, कालेज, गलियों से जुड़ी यादें।
मेरे लिए कभी हुआ करता था
ननिहाल का शहर ,
अब कौशांबी का हिस्सा है।

शहर के इस कोने से
उस कोने तक
चारो चौहद्दियों पर हैं हमारी छापें
वहीं मेरे भीतर का कवि सुगबुगाता था।
जिस गंगा को हम रेल की
खिड़कियों से बहुत भोर में
देखने के लिए उठ जाते
मां फुटकर फिकवातीं।
और हम रेल से उतरकर भी
एक गंगा को निहारते रहते।

तब तांगे भी चलते थे।
उस पर बैठना भी सुहाता था।
टाक् टुक्, टाक् टुक करती
घोड़े की पैरों की आवाजें
खींचती थीं सड़क दर सड़क

हम होते मौसियों के घर
नन्हें जूतों को उतार दौड़ पड़ते
माटी की गंध समाई गोद में
कीटगंज की बलरेज से देखते
प्रयागराज के सभी नजारे।

चाट, कुल्फी, गोलगप्पा, समोसा
अमरूद, रेवड़ी, और न जाने क्या- क्या?
कस्बे की आंखों के लिए
ये सब बहुत कौतूहल था।
कीटगंज की बीच वाली सड़क
बारात, तिलक, कुम्हार- पूजन
विसर्जन, और अंतिम यात्रा
सभी कुछ समेटे रहता अपने भीतर।

बाजों की आवाज सुन कर
हम रेलिंगों पर लटकते

और डांट कर हटाती थीं मौसी
फिर कुर्सियों पर खड़े होकर देखते
गंगा जी भी अवश्य ले जातीं
देखते इलाहाबाद की रौनकें
बहुत सुकूंन से जीते थे लोग
भाग- दौड़ बिलकुल नहीं
शिक्षा के अव्वल शहर
सभी की प्रबल प्रतिभाएं
होतीं थीं विकसित।

हम बड़े हो गए
ना जाने कितने अनुभव आए और गये।
पर वह छोटा बच्चा आज भी याद करता है मन्नो मौसी को
जिसने हमेशा ये एहसास दिलाया
कि मेरे भीतर एक संचेतना है।
जो कवि है।
जिद करके सुनती मेरी रचनाएं
मैं गाने लगती और वे गंगा हो जातीं।

□□□

महाकुंभ में सूर्य का महत्व

विश्व का सबसे विशाल आध्यात्मिक, धार्मिक, शैक्षिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मेला, जिसे कुंभ के नाम से जाना जाता है, उसके याग्यिक पक्ष की कल्पना करना तो कठिन है ही, साथ ही उसकी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक महत्ता भी अवर्णनीय है। समुद्र की तरह का जन सैलाब और विभिन्न प्रकार की धार्मिक विधियों की एक साथ अलग-अलग प्रस्तुतियाँ अन्यत्र कहीं और नहीं देखी जा सकतीं। युगों- युगों से चली आ रही यह परंपरा मानव के आध्यात्मिक ज्ञान व जीवन की सार्थकता की अनुभूति कराने वाली सजीव पाठशाला है। एक से बढ़कर एक दुर्लभ तपस्वी, मनस्वी और ओजस्वी श्रृषि- मुनियों के समागम का नाम है महाकुंभ। यह प्रत्येक बारह वर्षों बाद सुयोग के कारण अवतरित होता है। इसे ईश्वरीय विधान ही कहा जा सकता है, क्यों कि जिस अलौकिकता की अनुभूति यहाँ होती है, वह मानवीय संरचना से परे की चीज है। मानव संसाधन जुटा सकता है, साधना नहीं। मानव भौतिक आवश्यकता दिला सकता है, अभौतिक भव्यता नहीं। महाकुंभ केवल स्नान नहीं है, वह मानसिक परिमार्जन का सुअवसर है। प्रयागराज की महिमा अकथनीय है , वैश्विक शांति और सद्भाव की परिकल्पना यहाँ की आहुतियों में साकार होती हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस के 43 वे दोहे में इसका चित्रण बहुत अलौकिकता के साथ किया है-----

मति अनुहारि सुबारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी संकरहि कह कबि कथा सुहाइ।
अब रघुपति पद पंकरूह हिय धरि पाइ प्रसाद।
कहउं जुगल मुनिबर्य कर मिलन सुभग संबाद।

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा, तिन्हहि राम पद अति अनुरागा।
तापस सम दम दया निधाना, परमारथ पथ परम सुजाना।
माघ मकरगति रबि जब होई, तीरथपतिहिं आव सब कोई।
देव दनुज किन्नर नर श्रेणी, सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनी ।
पूजहिं माधव पद जलजाता , परसि अखय बटु हरषित गाता।

भरद्वाज आश्रम अति पावन, परम रम्य मुनिबर मन भावन।
तहाँ होई मुनि रिषय समाजा, जाहि ते मज्जन तीरथ राजा।
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा, कहहिं परसपर हरि गुन गाहा।

ब्रह्म निरूपण धरम विधि बरनहिं तत्व बिभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ग्यान बिराग।

एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं , पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं।
प्रति संबत अति होई अनंदा, मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृंदा।
एक बार भरि मकर नहाए, सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए।
जागबलिक मुनि परम बिबेकी, भरद्वाज राखे पद टेकी।
सादर चरन सरोज पखारे, अति पुनीत आसन बैठारे।
नाथ एक संसय बड़ मोरे, करगत बेदतत्व सबु तोरे।
कहत सो मोहि लागत भय लाजू , जौ न कहउं बड़ होई अकाजू।

संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न बिमल बिबेक उर गुरू सन किएं दुराव।

इस प्रकार बहुत अनुनय-विनय करने के बाद भारद्वाज श्रृषि ने रामकथामृत का विस्तार प्रयागराज में किया।

महाकुंभ में माघ महीने में सूर्य की मकर स्थिति का विशेष महत्व है। यह सारा महोत्सव सूर्य के अतिविशिष्ट खगोलीय उपस्थित के कारण होता है, जिसे हमारे श्रृषिगण आत्मिक विवेचना से अनुभूत कर पाए थे और इसे लोकोपकारी बनाने के लिए इन अनुष्ठानों की संकल्पना साकार किए। सूर्य नारायण इस सृष्टि के नियंता , पोषक, और युगभेद और कल्पविधान के सृष्टा हैं। संपूर्ण ब्रह्मांड में इन्हीं का संचालन और नेतृत्व है, इसलिए वेद इनकी वंदना करते हैं। सभी पुराणों में इनकी चर्चा है।श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि सूर्य के द्वारा ही दिशा, आकाश, द्युलोक, भूर्लोक, स्वर्ग और मोक्ष का विभाजन होता है।

सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः द्यौर्मही भिदा।
स्वर्गोपवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः।। (5/20/45)

इसके साथ ही वहाँ यह भी बताया गया है कि- भगवान सूर्य ही देवता, तिर्यक, मनुष्य, सरीसृप, लता- वृक्षादि एवं समस्त जीव समुदाय के आत्मा और नेत्र के अधिष्ठाता हैं-------

देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम्।
सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः।। (5/20/46)

विष्णु पुराण के द्वितीय अंश में आठवें अध्याय से दसवें अध्याय तक भगवान सूर्य के वैशिष्ट्य, स्थिति- गति आदि का विस्तृत वर्णन हुआ है। दसवें अध्याय में विभिन्न मासपरक सूर्य के बारह अन्वर्थक नाम निम्न हैं----

चैत्र के सूर्य धाता
वैशाख के सूर्य अर्यमा
ज्येष्ठ के सूर्य मित्र
आषाढ़ के सूर्य वरूण
श्रावण के सूर्य इंद्र
भाद्रपद के सूर्य विवस्वान
आश्विन के सूर्य पूषा
कार्तिक के सूर्य पर्जन्य
मार्गशीर्ष के सूर्य पूषा
माघ के सूर्य त्वष्टा
फाल्गुन के सूर्य विष्णु

इनका वैज्ञानिक महत्व है-- धाता यानि निर्माता, संग्राहक, समर्थक, प्राण। ये निर्माता भी हैं और रसों के संवाहक भी। आक्सीजन के अधिष्ठान होने के कारण उपरोक्त सभी विशेषणों को परिपूरित करते हैं।

विष्णु पुराण में लिखा है-
यस्मद्विष्टामिदं विश्वं तस्य शक्यता महात्म्नः।
तस्मात स प्रोच्यते विष्णुर्विशेर्धातो: प्रवेशनात्।

सूर्य का एक नाम विष्णु है। पाराशर श्रृषि के अनुसार इसका अर्थ रक्षक होता

है। संपूर्ण विश्व उनकी ही शक्ति से संचालित है। योगशास्त्र में भगवान पतंजलि कहते हैं कि ' भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ' अर्थात सूर्य का संयम करने से सारे सृष्टि का ज्ञान हो जाता है।

वेदों में सूर्य को चिकित्सक माना गया है और ये ही सर्वरोग निदान कारक हैं। (यजुर्वेद 7/42) में ' सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ' कहा गया है। संसार का समस्त भौतिक विकास सूर्य पर ही निर्भर है। उनके बिना वनस्पतियों का उगना संभव नहीं है। वायु गतिहीन होकर शुद्ध नहीं हो पाएगी। मनुष्य का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा और पृथ्वी की उत्पत्ति नहीं होगी। सूर्य की रोगनाशक शक्ति को स्वीकारते हुए अथर्ववेद में लिखा है----

अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव।
सूर्यः कृणोतु भेषज चंद्रमा वोऽपोच्छतु।

(6/83/1)इस तरह सूर्य समस्त व्याधियों का नाश करें, ऐसा कहा गया है। इनकी कृपा से पीलापन यानि पांडुरोग, हृदय रोग, अन्य समस्त रोगों की चिकित्सा संभव है।

अनु सूर्यमुयतां हृद्योतो हरिमा च ते।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि। । (अथर्ववेद -1/22)

इतना ही नहीं गीता में भगवान कृष्ण ने स्वंय कहा है- 'ज्योतिषां रविरंशुमान्'

सूर्य नारायण भक्तों पर शीघ्र दयालु होकर उन्हें आरोग्य प्रदान करते हैं।

सूर्यो नीरोगतां दद्याद् भक्त्या यैः पूज्यते हि सः।
अरोगो दृढगात्रः स्याद् भास्करस्य प्रसादतः।

इतना ही नहीं धन और यश की प्राप्ति भी उन्हीं की कृपा से होती है। ऐसा पद्म पुराण में कहा गया है----

शरीररोग्यकृच्चैव धनवृद्धियशस्करः।
जायते नात्र संदेहो यस्य तुष्येद्दिवाकरः। ।

प्रश्नोपनिषद के 3/8-9 में कहा गया है कि- 'निश्चय ही आदित्य बाह्य प्राण है। यह इस चक्षुष प्राण पर अनुग्रह करता हुआ उदित होता है। पृथिवी में जो देवता हैं, वे पुरूष के अपानवायु को आकर्षण किए हुए हैं।

आदित्य ह वै बाह्य प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्वानः।

महाभारत के अनेक खंडों में अनेक प्रकार से सूर्य की महिमा का गुणगान किया गया है। उन्हें ग्रहपति, कलाध्यक्ष, ज्योतिष्क आदि नामों से विभूषित किया गया है।

तव यद्युदयो न स्यादन्धं जगदिदं भवेत्।
न च धर्मार्थकामेषु प्रवर्तेरन् मनीषिणः।
आधानपशुबन्धेष्टिमंत्रयज्ञतपः क्रियाः।
त्वत्प्रसादादवाप्यन्ते ब्रह्मक्षत्रविशां गणैः। (महाभारत 3/3 53- 54)

धौम्य श्रृषि कहते हैं--

सूर्योदये यः सुसमाहितः पठेत् स पुत्रदारान् धनरत्नसंचयान्।
लभेत जातिस्मरतां नरः सदा, धृति स्तवं देववरस्य यो नरः।

प्रकीर्तयेच्छुचिसुमनाः समाहिताः, विमुच्यते शोकदवाग्निसागरा-
लल्भेतकामन् मनसा यथेप्सितान्।

(महाभारत 3/3/ 30-31)

इतना ही नहीं श्रृषिगण, वेद के तत्त्वज्ञ , ब्राह्मण, सिद्ध, चारण, गंधर्व, यक्ष, दिव्य मानव, वसुगण, मरुद्गण, साध्य, आदि सभी सूर्य की उपासना से ही समृद्ध हैं।

रामचरितमानस के अयोध्याकांड में गोस्वामी तुलसीदास जी प्रयागराज की महिमा लिखते हुए कहते हैं----

प्रात प्रातकृत करि रघुराई, तीरथराज दीख मग जाई।
सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी, माधव सरिस मीत हितकारी।
चारि पदारथ भरा भंडारू, पुन्य प्रदेस देस अति चारू।
छेत्रु अगम गढु गाढ़ सुहावा, सपनेहुं नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा।

सेन सकल तीरथ बर बीरा, कलुष अनीक दलन रनधीरा।
संगमु सिंहासन सुठि सोहा, छत्रु अखयबट मुनि मन मोहा।
चवंर जमुन अरु गंग तरंगा, देखि होंहि दुख दारिद भंगा।

सेवहिं सुकृति साधु सुचि पावहिं सब मनकाम।
बंदी बेद पुरान गन कहहिं बिमल गुन ग्राम।

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ, कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ।
अस तीरथपति देखि सुहावा, सुख सागर रघुबर सुख पावा।
कहि सिय लखनहिं सखहिं सुनाई, श्रीमुख तीरथराज बड़ाई।
एहि बिधि सकल अलौकिक बेनी, सुमिरत सकल सुमंगल देनी।
करि प्रणाम देखत बन बागा, कहत महातम अति अनुरागा।
मुदित नहाइ कीन्ह सिव सेवा, पूजि जथाबिधि तीरथ देवा।
तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए, करत दंडवत मुनि उर लाए।
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई, ब्रह्मानंद रासि जनु पाई।

ऐसे पावन तीरथराज में जहां हर युग, देश, काल, परिस्थित में अवतारी पुरूषों ने यहाँ आकर साधना- वंदना की है, उसका बखान साधारण जन के लिए कठिन ही नहीं असंभव है। विश्व के समस्त भौतिक-अभौतिक लाभार्थियों की समागम स्थली संपूर्ण माघ मास में ज्ञान-विज्ञान की तीर्थस्थली बन जाति है।

प्रयागराज की भूमि श्रृषि- मुनियों को सर्वाधिक प्रिय रही, यहाँ हमारी सभी आध्यात्मिक - दर्शन का संगम होता है। वैष्णव, शैव, शाक्त, औघड़, अघोरी, आस्तिक, नास्तिक, ध्यानी, ज्ञानी, योगी, जती, तपी, सभी एक धरातल पर तीर्थराज को महिमामंडित कर, एकात्म भाव से मानवता की अलख जगाते हैं। जिस तरह एक सूर्य समस्त सचराचर जगत का प्रतिपालन करता है, वैसे ही यहाँ सभी आध्यात्मिक आयामों को एक क्षितिज के नीचे अवतरित किया जाता है।

डॉ शुभदा पांडेय।
(वरिष्ठ साहित्यकार व शिक्षाविद्)

□□□

महाकुंभ में अखाड़ों का प्रतिपाद्य

भारतीय संस्कृति हर दृष्टि से उदार व परमार्थी रही है। इसने विश्व- कुटुंब की संकल्ना अपने शास्त्रों में की है चाहे वह 'वसुधैव कुटुंबकम्' का सूत्र हो या' सिया राम मय सब जग जानी' की मंगल भावना रही हो। हमारा सिद्धांत सबकी कुशलता का रहा है। यहीं हमारी संस्कृति का महाप्राण है। हमने हिंसा और ईर्ष्या का पाठ नहीं सीखा। हमारे वैश्विक विकास की यही धूरी रही है। विश्व ने इसीलिए इसे विश्व गुरू की संज्ञा देकर सम्मानित किया। हमारे अभौतिक व भौतिक वैभव सदा से सबके आकर्षण का केंद्र रहे हैं। जो लोग इसकी महती विचारधारा को श्रेष्ठ मानकर नतमस्तक हुए वे इसकी सराहनीय चिंतन का वरण करते रहे और समुन्नत होते गए। पर जिन आताताईयों ने इसकी भौतिक संपदा को लूटना चाहा और अभौतिक सांस्कृतिक धरोहर को कुचलना चाहा , उसे परास्त करना चाहा , अपनी हिंसात्मक प्रवृत्ति से आक्रमण कर तहस- नहस करना चाहा, उनके लिए अनेक बार हमारी साधुवृत्ति धोखा खाती रही। मंदिरों के सोना- चांदी, हीरे- जवाहरात, लूटे गए और हम सज्जनता का पर्याय बने पराजित होते रहे, क्यों कि हमने शांति का चयन किया था। इन परिस्थितयों से मुकाबला करने की मानसिकता नहीं थी। तब जाकर हमारे अग्रजों ने शास्त्र के साथ शस्त्र का भी प्रशिक्षण देना आरंभ किया, जिससे वे धर्म की रक्षा कर सकें। मजबूत संकल्प और सुदृढ़ शरीर के साथ हमारे आध्यात्मिक ध्वजाओं को संवारा गया, जिन्हें अखाड़ा कह कर गौरवान्वित किया गया।

महाकुंभ में अखाड़े आकर्षण का केंद्र होते हैं। अखाड़ों की शुरूआत आदि शंकराचार्य ने की थी। कहा जाता है कि उन्होंने सनातन धर्म की रक्षा के लिए शस्त्र विद्या में निपुण साधुओं के संगठन बनाए थे, जिसमें उन्हें वेद- वेदांत के ज्ञान के अलावा शस्त्रों की भी सुदृढ़ शिक्षा दी जाती थी। इन्हीं संगठनों का नाम अखाड़ा पड़ा। अखाड़ा का शाब्दिक अर्थ होता है, वह स्थान जहां युद्ध किया जाता है। इसके अंतर्गत मल्लयुद्ध भी होता था। इसे अभ्यास का स्थान भी कहते हैं। मार्शल कलाकारों को यहाँ प्रशिक्षित किया जाता है। गुरू- शिष्य परंपरा में धार्मिक , संन्यासियों के लिए संप्रदाय , मठ के संदर्भ में अखाड़े अपनी समृद्ध परंपराओं और विकसित होती

भूमिकाओं के साथ, सनातनी आध्यात्मिकता के साथ खड़े हैं। 13 अखाड़े हैं, जिन्हें तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया गया है-----

1- शैव अखाड़ा
2- वैष्णव अखाड़ा
3- उदासीन अखाड़ा

अखाड़ों का धार्मिक महत्व के अलावा भारतीय समाज में एकता, पारंपरिक सद्भाव, शांति और जागरूकता को जागृत रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका है। अखाड़ों के बिना कुंभ की कल्पना करना भी कठिन है। ये अखाड़े सबसे पहले आने आरंभ होते हैं, जिन्हें पेशवाई कहा जाता है। ये अपने अलग-अलग समूहों में अपनी मौलिक पहचानों के साथ गाजे- बाजे, ढोल- नगाड़े , हाथी- घोड़े, ध्वजा- पताका, अस्त्र-शस्त्र, करतब- कला आदि के साथ विभिन्न मार्गों से होते हुए, संगम- स्थली तक आते हैं और अपने पड़ाव में कुंभ तक के लिए ठहर जाते हैं। जिन रास्तों से जुलूस गुजरते हैं, वे फूल, तोरण, द्वारों से सजे रहते है। भक्तिमय गीत - संगीत बजते रहते हैं। जयकारों से दिग्दिगंत गूँज उठता है।

अखाड़ों के नाम ------

1- निरंजनी अखाड़ा
2- जूना अखाड़ा
3- महानिर्वाण अखाड़ा
4- अटल अखाड़ा
5 - आह्वान अखाड़ा
6- आनंद अखाड़ा
7- पंचाग्नि अखाड़ा
8- नागपंचमी गोरखनाथ अखाड़ा
9- वैष्णव अखाड़ा
10- उदासीन पंचायती बड़ा अखाड़ा
11- उदासीन पंचायती नया अखाड़ा
12 - निर्मल पंचायती अखाड़ा

13 - निर्मोही अखाड़ा

पंचायती अखाड़ा महानिर्वाणी (दारागंज प्रयाग) श्री पंच अटल अखाड़ा (चौक हनुमान, वाराणसी) पंचायती अखाड़ा निरंजनी (दारागंज) में अवस्थित है।

जूना अखाड़ा की स्थापना 1145 में उत्तराखंड के कर्णप्रयाग में पहले मठ के रूप में हुई। इसे भैरव अखाड़ा भी कहते हैं। यह सबसे बड़ा अखाड़ा है ,और समाज के लिए सबसे अधिक सेवाएं प्रदान करता है। सबसे अधिक और सबसे अधिक वर्गों के संत इसी अखाड़े में हैं। शाही स्नान में सबसे अधिक और सबसे पहले इनको ही स्थान दिया जाता है। इस अखाड़े का सबसे बड़ा पद महामण्डलेश्वर का होता है। इसमें अब तक एक लाख संन्यासी जुड़ चुके हैं। वर्तमान में इस अखाड़े के महामण्डलेश्वर अवधेशानन्द गिरी जी महाराज हैं। देश-विदेश में इनके शिष्यों की भरमार है।

एक रोचक प्रसंग इन अखाड़ों के संदर्भ में कहा जाता है। एक बार मुगल शासन के दौरान भैरव अखाड़े के साधुओं से जूनागढ़ के निजाम ने युद्ध विराम की मांग की थी। जूनागढ़ के निजाम ने भैरव अखाड़ा को समाप्त करने के उद्देश्य से उन्हें भोजन पर बुलवा कर जहर पिलाने की साजिश रची। जिसमें गिरनार पर्वत पर रहने वाले 2000 नागा साधुओं में से कुछ को विष पिलाने में सफल हो गया। यह घटना लगभग 145 साल पुरानी है। ये संन्यासी 1885 में उत्तराखंड में अर्धकुंभ में जा रहे नागाओं को भोजन का निमंत्रण भिजवाया। पर्वत की तलहटी में बसा नागाओं का मेला अपनी चरम पर था। निजाम को नागाओं से कब्जा करने का भय था। इसलिए उसने भोजन में विष मिलवा दिया, जिससे 200 नागा मारे गए। तभी नागाओं पर निजाम ने आक्रमण करा दिया। नागनाथ के अखाड़े के योद्धा गुरू दत्तात्रेय की धूनी लगा कर चल पड़े। हठ योग से जहर के प्रभाव को वे असरहीन कर दिए। और ऐसा भयानक युद्ध किए कि अंत में निजाम ने विराम का निवेदन भिजवाया। यह कथा आज भी जूना अखाड़े में विधिवत प्रचलित है। अपनी परम्परागत रूप में शिष्यों को दीक्षित करते हैं और उपाधि देते हैं। इन साधु-संतों का मानना है कि जब ये गंगा- तट पर पहुंचते हैं तो, वहाँ की धरती पवित्र हो जाती है। अनेक अखाड़ों का अपना इतिहास है , जो सदियों पुराना है। इनका मुख्य उद्देश्य सनातन धर्म को संरक्षित करना होता था। ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, जप, तप, आध्यात्म, प्रवचन, आदि के अलावा अन्य असुरक्षित लोगों से इसकी रक्षा

करना होता था ।शास्त्र और शस्त्र के समन्वय का नाम अखाड़ा है। उदासीन अखाड़े के लोग गुरू नानक देव की वाणी से प्रेरित हैं। ये पंचतत्वों की पूजा करते हैं। इन्हें हिंदु धर्म के रक्षक के तौर पर देखा जाता है।

सभी अखाड़ों की देखरेख और व्यवस्था के लिए 1954 में अखाड़ा परिषद की स्थापना की गई। जिसमें प्रत्येक अखाड़े के दो- दो सदस्य होते हैं। इन अखाड़े में आए लोगों के लिए कुछ नियम हैं------

1- ब्रह्मचर्य
2- सेवा कार्य (धर्म और राष्ट्र)
3- इनकी आयु 18 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए।
4- यहाँ आते ही स्वंय को मृत घोषित करना होगा।
5- अपना श्राद्ध करना
6- वस्त्रों का त्याग
7- भस्म ही लगा सकते हैं।
8- रूद्राक्ष पहन सकते हैं।
9- संपूर्ण जटा रखना या सिर छिलवाए रखना।
10- भोजन एक समय वो भी भिक्षा मांग कर (केवल सात घरों में)
11- भूमि शयन करना
12- मंत्र में आस्था
13- बस्ती से बाहर रहना
14- किसी को प्रणाम नहीं करना
15- किसी की निंदा न करना
16- इनके लिए केवल संन्यासी ही प्रणम्य हैं।
17- अनुयायी बनने से पहरे यह जानकारी लेना कि वो अनुयायी क्यों बनना चाहते हैं।
18- ब्रह्मचर्य का परीक्षण लिया जाता है।
19- इनके पांच गुरू होते हैं- विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश,
20- बाल कटाने और पिंडदान के पश्चात ये अवधूत कहे जाते हैं।
21- लिंग भंग-

22- अखाड़े के ध्वज के नीचे कई पद और अधिकार दिए जाते हैं।

23 महिलाएं भी इसमें शामिल हो सकती हैं।

किन्नर अखाड़े से एक नया इतिहास लिखा गया। किन्नर भी अस्त्र-शस्त्र युक्त अखाड़े का हिस्सा बने। यह उपेक्षितों के उन्नयन के लिए वरदान साबित करने वाली स्वीकृत है , जिसमें किन्नर समाज कुंदन बन कर प्रस्तुत हुआ है। इस बार अखाड़े में इनकी महामण्डलेश्वर बहुत उत्साहित दिखीं ।उन्होंने कहा-" मुझे खुशी है कि समाज का हर वर्ग धर्म के साथ चल रहा है। "

अखाड़ों में युद्ध कौशल की शिक्षा दी जाती है। हथियार उठाने वाले साधुओं का मुख्य लक्ष्य तो मोक्ष है, किंतु राष्ट्र पर आई आपदा में ये सर्वप्रथम खड़े मिलेंगे। अनेक लोगों के विचार से ये सेना के रेजिमेंट जैसे हैं। एक प्रसंग सुनाया जाता है कि-- 1759 में अवध नवाब सफदर जंग को पस्त करके अहमद खां बंगस ने इलाहाबाद के किले को घेर लिया और नगर को भी घेरने के प्रयास में था। इसी समय नागा समुदाय के 60000 हजार संन्यासियों ने महंथ राजेंद्र गिरी जी की अगुवाई में फरवरी से अप्रैल तक युद्ध करके उसे परास्त किया। इस तरह इलाहाबाद के किले और नगर की रक्षा हो गई, जिसे आज हम पुनः प्रयागराज नाम से प्रतिष्ठित कर गौरवान्वित हैं। इसी तरह का एक युद्ध बनारस में औरंगजेब की सेना के साथ भी लड़ा गया था। और उसमें भी नागा संन्यासियों की भारी विजय प्राप्त हुई थी।

कुछ अखाड़ों की विशिष्ट जानकारियां-----

महानिर्वाणी अखाड़ा 759 ईसवी में स्थापित हुई, जिसके श्रृषि नायक कपिल मुनि हैं। इनके भाला का नाम भैरव है। इसका मुख्यालय प्रयागराज है, शाखाएं अन्य स्थानों पर भी हैं। इसकी स्थापना उत्तम गिरी, रूपा गिरी आदि ने की थी।

आवाहन अखाड़ा की स्थापना 547 ईसवी में हुई, इसका मुख्यालय वाराणसी है। दीनानाथ गिरी, दलपत गिरी आदि ने इसका आरंभ किया।

अटल अखाड़ा की स्थापना 646 ईसवी में बनारस में हुई। इनके आराध्य भगवान गणेश जी हैं। इनकी कीर्तिगाथा स्वर्णाक्षरों में लिखी हुई है।

जूना अखाड़ा 1156 ईसवी में स्थापित हुआ। ये भैरव भगवान को अपना इष्ट मानते हैं। सबसे अधिक योद्धा होने का गौरव इनके पास है।

आनंद अखाड़ा का बनारस में मुख्यालय है, ये सूर्य नारायण के उपासक हैं। इनकी लाल ध्वजाओं में सुनहले सूर्य बने रहते हैं।

निरंजनी अखाड़ा का मुख्य कार्य सेवा हरिद्वार से की जाती है। इसकी स्थापना 904 ईसवी में की गई थी। ये कार्तिकेय की पूजा करते हैं और अपना सेनानायक मानते हैं।

अग्नि अखाड़ा की स्थापना 1136 ईसवी में की गई थी। ये गायत्री मां और अग्नि की उपासना करते हैं। वीरत्व की मिशाल हैं ये योद्धा।

पंचायती अखाड़ा का मुख्यालय प्रयागराज है, इसकी स्थापना 1768 में की गई थी। आध्यात्मिक और युद्ध निपुणता में इन्हें महारथ हासिल है।

इसी तरह नया उदासीन अखाड़ा 1768 में प्रकाश में आया। और निर्मल अखाड़ा 1856 में खोला गया।

संन्यासी क्रांति क्या है-----

सबसे पहले जिस अखाड़े की स्थापना हुई वो आवाहन अखाड़ा था। इसमें 52000 हजार सशस्त्र सेना थी। इसलिए इसे अखाड़ों का राजा भी कहा जाता है। सनातन की रक्षा ही इसका ध्येय है। इसका मूल शब्द आह्वान है जिसका अर्थ है बुलाना या पुकारना। विक्रम संवत 1202 ईसवी में इसे गठित किया गया। इसके सेनाध्यक्ष दत्तात्रेय जी हैं। इस वर्ष 2025 के महाकुंभ में इसके महंत महेश गिरी जी ने कहा ----" हम धर्म की रक्षा के लिए कटिबद्ध हैं। हमारा संन्यास पहले अवधूत तक ही सीमित था, जब आक्रमणकारियों के अत्याचार बढ़ने लगे तब इसे अवधूत से आगे बढ़ाकर नागा सिद्धि तक पूर्ण माना गया। "

इन्हें अपने अखाड़ों की बहुत सी बातें गोपनीय रखनी होती हैं। अस्त्रागार में कोई नहीं जा सकता। महंत कैलाश पुरी ने कहा कि हमारा कार्य शास्त्रों की चर्चा करना

है। लोगों में धार्मिक भावना को सही अर्थों में व्यक्त करना है। किंतु यदि धर्म और मानवता पर कोई संकट आता है तो, हम ध्यान में डूबे नहीं रह सकते गीता में कृष्ण के उपदेशानुसार युद्ध हमारा पहला धर्म होता है।

इस अखाड़े का पूरा नाम श्री शंभु पंचदसनाम अखाड़ा है। 1780 ईसवी को संन्यासी क्रांति वर्ष के नाम से जाना जाता है। उस समय देश में लगभग 500 सशक्त राजा हुआ करते थे। किंतु मुगल शासन से प्रताड़ित हिंदुओं को कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था, हमारी सेनाएं उनके तोपों और बारूद के आगे निरस्त थीं। मुगल आक्रमण से आकुल और पीडित देश को देखकर संतों ने गुरिल्ला युद्ध आरंभ किया और भीषण रार मचा कर उन्हें परास्त किया। अपने ध्वजा के प्रति इनकी विशेष निष्ठा है। ध्वजा का अर्थ होता है - सदा गतिशील रहना।, इसमें 52 बंध आवश्यक हैं। रानी लक्ष्मीबाई के युद्ध में 40000 हजार संतों ने अपने को बलिदान किया। ध्वजा को हर कोई छू नहीं सकता।यह कभी गिरनी नहीं चाहिए। इनके विजय के किस्से बादशाह जहांगीर के समय के भी प्रचलित हैं। छतरपुर में हजारों संतों की समाधियाँ आज भी देखी जा सकती हैं। ये नागा सैन्य वीर 12 वर्षों में तैयार होते हैं। 6 वर्ष संन्यास और फिर यज्ञोपवित, पिंडदान आदि संस्कारों द्वारा उन्हें एक नया जीवन प्रदान किया जाता है। इनकी संख्या अभी 5 लाख है , जिसमें 120 महामण्डलेश्वर हैं।

जूना अखाड़े के महामण्डलेश्वर अवधेशानन्द गिरि जी महाराज ने महाकुंभ 2025 पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि-----" प्रत्येक 12 वर्ष बाद पूर्ण कुंभ या महाकुंभ का आगमन होता है। पहले अखाड़ों का नगर प्रवेश होता है, फिर बहुत धूमधाम से कुंभ- प्रवेश होता है, जिसे पेशवाई भी कहते हैं। इस महाकुंभ में महापुरुष, मठाधीश, महंत, मंडलेश्वर, महामण्डलेश्वर, किन्नर, आदि का हजारों की संख्या में आगमन हुआ है। अब यहाँ नियमित रूप से देवधूनी जागृत होगी, देव पूजा, अर्चना, उपासना, अभिषेक, आराधना आरंभ हो जाएगी। संतों की दिनचर्या में अलग-अलग तप, उपासना के अलग-अलग ढंग, सभी कुंभ में देखने को मिलेगा। हम अद्वैत के उपासक हैं , हमें सभी में परमसत्ता की प्रतीति होती है। यह संगम के तीनों नदियों की मिलन- स्थली का मनोरम स्थल पर अनेक विशिष्ट व भव्य अनुष्ठान होंगे। आकाशीय संसदों की सुमंगल एकत्रीकरण पर पंचदेव उपासना महादेव, नारायण व शक्ति की अर्चना होगी। यह क्षेत्र वेणी माधव का है नील माधव की उपासना का है। यहां

द्वादश माधव की पूजा-अर्चना की जाती है। यहां सूर्य सबसे प्रमुख देवता हैं। यहाँ की अधिष्ठात्री देवी ललिता देवी है, जिनसे ब्रह्म से लेकर सामान्य कीट तक की उत्पत्ति होती है। भैरव की उपासना होगी। यक्ष, गंधर्व, किन्नर सभी विविध रूपों में यहाँ आएंगे। सभी पंथों के संत यहाँ आएंगे। सभी संप्रदायों के आचार्य व उनके अनुयायी उपासक भी आएंगे। प्रयागराज आध्यात्मिक प्रयोग की धरती है। यहाँ सेवाव्रती, दानी, कलाकार सभी का आगमन होगा। मेरे जूना अखाड़ा परिक्षेत्र में नृत्य- नाटिकाओं का मंचन होगा। विभिन्न देशों के राजनयिक अपने ध्वजों सहित पधारेंगे। राजकीय, केन्द्रीय सत्ता व शासन- प्रशासन अधिक से अधिक लोगों को यहाँ आने का आवाहन कर रहे हैं और वैसी व्यवस्थाएं व तैयारियाँ भी हैं। यह अनुष्ठान आध्यात्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण, संवर्धन, समन्वय के समुच्च संयोजन के लिए किया जाता है। मैं आवाहन करता हूँ कि आइए यहाँ अनुभव लीजिए। दिव्य, भव्य, और हरित कुंभ का विमर्श और मंथन स्थान है। पहले यहाँ शास्त्रार्थ होता था, जिसमें परमार्थिक संकल्प लिए जाते थे।

डॉ शुभदा पांडेय
(वरिष्ठ साहित्यकार व शिक्षाविद्)

□□□

महाकुंभ में सूर्य महोत्सव का महात्म्य

माघ मकर गति रवि जब होई।
तीरथपतिहिं आव सब कोई।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने प्रयागराज की महिमा का वर्णन करते हुए, उसे गंगा-यमुना की सान्निध्य- स्थली कह कर स्तुत्य माना है, किंतु यह भूमि तब और पूजनीय और महिमामंडित हो जाती है, जब सूर्य माघ मास में मकर राशि में चले जाते हैं और वहाँ कुंभ जैसे महायज्ञ और आध्यात्मिक अनुष्ठानों का आयोजन होता है। गंगा तो पतित पावनी हैं ही, सूर्य भी इस सृष्टि के उत्पत्ति कारक हैं। सूर्य की महिमा जाने बिना महाकुंभ की सिद्धिदायक लाभ सदैव अलभ्य रहेगा।

सूर्य सृष्टि के प्रथम और परम आराध्य हैं। सृष्टि के प्राणतत्व और ऊर्जा के रुप में उनकी उपासना की जाती है। ज्ञान- विज्ञान, कला- साहित्य, गायन-वादन, वेद- वेदांत, न्याय- प्रशासन, वनस्पति, चिकित्सा, आदि सभी भौतिक-अभौतिक समृद्धियों की प्राप्ति उनसे ही होती है। गायत्री मंत्र से उनकी साधना कर बड़े - बड़े ऋषि- मुनियों ने सृष्टि के रहस्य का अन्वेषण किया। सृष्टि के समस्त दुखों का निवारण उनकी साधना से सम्पन्न होता है। प्रातःकालीन सूर्य का दर्शन करना जीवन को उल्लसित और उत्साहित करता है।

इसी सूर्य उपासना का लोकपर्व है छठ महोत्सव, जिसे बिहार और झारखंड सहित पूर्वी उत्तर प्रदेश में बहुत धूमधाम और निष्ठा के साथ मनाया जाता है। पाँच दिनों तक चलने वाला यह पर्व जीवन में सात्विकता का संचार करता है। असंख्य लोकगीतों के माध्यम से भगवान भास्कर का गुणगान किया जाता है। यह पूर्णतः निजी और व्यक्तिगत पर्व है, जो नदी किनारे सामूहिक बन जाता है। व्रत से पहले शारीरिक और मानसिक शुद्धता आरंभ कर दी जाती है। नहाय-खाय, खरना, सांध्य अर्घ्य, प्रातः अर्घ्य और पारण तथा प्रसाद विवरण तक मनाया जाता है। सात्विक रूप से अपनी निजी याचनाओं के साथ व्रती नदी तक जाते हैं। घंटों पानी में रहकर सूर्य उपासना करते हैं। लोगों की आस्था के आगे आकाश समीप लगने लगता है। गीतों की गुहार से सूर्य नारायण पिघल कर पानी में विस्तार पाते हैं। हर प्रकार की वेदना समाहित रहती है- भक्तों की प्रार्थना में।

स्वामी रामतीर्थ ने "सत्यं तातान सूर्यः" ऋग्वेद के इस मंत्र को आध्यात्मिक जीवन

का प्रतीक मानते हुए सूर्य को सबसे बड़ा संन्यासी माना है, क्यों कि वे सबको जीवन और प्रकाश प्रदान करते हैं। भगवान सूर्य ने याज्ञवल्क्य ऋषि को वाजसेनयिसंहिता का उपदेश दिया था। सूर्य के सात अश्व निष्काम कर्मयोग और और आत्मज्ञान का प्रतीक हैं। उनके नाम निम्न हैं----

जयोऽजयश्च विजयो जितप्राणो जितश्रमः।
मनोजवो जितक्रोधो वाजिनः सप्त कीर्तिताः।

सूर्य के पुत्र हैं यम जो परमज्ञानी और जीवन की गति को प्रमाणित करते हैं। नचिकेता ने उनसे शिक्षा प्राप्त कर गूढ़ ज्ञान को उद्घाटित किया था। " सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च " ऋग्वेद में इस धारणा का परिपाक हुआ। सूर्य सृष्टि के उद्भव कर्ता और विलयकर्ता भी हैं। सूर्योपनिषद में इसका वर्णन आता है।

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च। । (गीता)

अथर्ववेद -- 5/7/9 के अनुसार सूर्य सबके नेत्र हैं। "सूर्योदय मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथ्वी शरीरम्" सूर्य का गुरुत्व आचार्य के रूप में भी प्रतिष्ठापित हुआ है। वैदिक युग से विद्याध्ययन के लिए जब उपनयन संस्कार किया जाता था तब विद्यार्थी और गुरु हाथों में जल लेकर निम्न मंत्र पढ़ते और गुरु अपने हाथ का उसके हाथों में डाल कर अंगूठा पकड़ लेते।

तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम्।
श्रेष्ठ सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि।

(ऋग्वेद 5/82/1)

अर्थात--(हम सवितादेव के भोजन को प्राप्त कर रहे हैं। यह श्रेष्ठ है, सबका पोषक और रोगनाशक है।)

इसके बाद आचार्य कहते हैं---

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां।
पूष्णो हस्ताभ्यां गृभ्णाम्यसौ।

अर्थात--- (सविता देव के अनुशासन में अश्विद्वय की बाहों से तथा पूषा के हाथों से मैं तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ।)

महाभारत में युधिष्ठिर ने सूर्य की स्तुति की है और उनसे अक्षय पात्र की प्राप्ति की थी ---

त्वामिन्द्रमाहुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः।
त्वमग्निस्त्वं मनः सूक्ष्मं प्रभुस्त्वं ब्रह्म शाश्वतम्।

अर्थात--(सूर्य! आप इन्द्र, रुद्र, विष्णु, प्रजापति, अग्नि, मन, प्रभु और ब्रह्म हैं।)

आदित्यहृदय स्त्रोत के अनुसार एक ही सूर्य दिन के तीनों प्रहरों में अलग-अलग रूप में पूजित हैं। उदय के समय ब्रह्मा का स्वरुप, मध्यकाल में महेश्वर और अस्तकाल में स्वंय विष्णु का रूप हैं।

उदये ब्रह्मणो रूपं मध्यान्हे तु महेश्वरः।
अस्तमाने स्वंय विष्णुस्त्रिमूर्तिश्च दिवाकरः।

सूर्य के बारह रूपों के महत्व निम्न प्रकार से हैं---

इंद्र--- राजा
धाता-- प्रजापति
पर्जन्य-- जल बरसाते हैं
त्वष्टा-- वनस्पति और औषधियों में विराजमान हैं।
पूषा--अन्न में स्थित पोषक
अर्यमा-- वायु के माध्यम से सभी देवताओं में स्थित
भग--- देहधारियों के शरीर में स्थित
विवस्वान्-- अग्नि में स्थित
विष्णु-- धर्म की स्थापना के लिए
अंशुमान-- वायु रुप में प्रजा को आनंद देने वाले।
वरुण-- जल में स्थित
मित्र-- संपूर्ण लोक के मित्र

इस तरह सूर्य का वैशिष्ट्य उन्हें अतिशय लोकपूज्य बना देता है। सभी ग्रंथों में सूर्य की स्तुति की गई है।

ऊँ यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।

(सतत उदय होने वाले सूर्य और चंद्र जिनकी आँखें हैं, जिन्होंने अग्नि को अपना मुख बनाया है, उन महान ब्रह्म परमेश्वर को हम नमस्कार करते हैं।) अथर्ववेद--10/7/33

ऊँ मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमा
अस्तु सूर्यः माध्वीर्गावो भवन्तु नः।

अर्थात--(हमारे लिए वनस्पति, सूर्य और उनकी किरणें माधुर्ययुक्त हों।)

ऋक् 1/90/8

ऊँ असतो मा सद् गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय।

अर्थात--(हे भगवन्! आप हमें असत् से सत् की ओर और तम से ज्योति की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर ले चलें।)

शतपथब्राह्मण-14/4/130

सूर्य उपासना के लिए निम्न नियमों का पालन आवश्यक है----

1) प्रतिदिन सूर्योदय के पूर्व ही शय्या त्याग करना चाहिए।
2) स्नानोपरांत सूर्य नारायण को अर्घ्य देकर प्रणाम करना चाहिए।
3) सांध्य समय भी अर्घ्य देकर प्रणाम करना चाहिए।
4) प्रतिदिन सूर्य के 21, 108, या 12 नामों का जप करें। सूर्यसहस्रनाम का पाठ भी महान लाभकारक है।
5) आदित्यहृदय का पाठ प्रतिदिन करना चाहिए।
6) नेत्र रोग से बचने एवं अंधापन से रक्षा के लिए नेत्रोपनिषद् का पाठ करें।
7) रविवार को तेल, नमक, और अदरक का सेवन न करें।
8) रविवार को व्रत-उपवास रखें।

सूर्य की असंख्य रश्मियाँ हैं-- जिनमें सात प्रमुख हैं और इन्हें ही ग्रह-नक्षत्र मंडल की अधिष्ठात्री रश्मियाँ माना गया है। जो क्रमशः-- सुषुम्णा, सुरादना, उदन्वसु-संयद्वसु, विश्वकर्मा, उदावसु, विश्वव्यचा, अस्वराट् और हरिकेश हैं। इनकी विशेषताएँ निम्न हैं---

1) **सुषुम्णा--** यह रश्मि कृष्णपक्ष में क्षीण चंद्रकलाओं पर नियंत्रण करती है। संसार के सभी जड़-चेतन प्राणी चंद्रमा की पूर्णकला से क्षारित अमृत को सूर्य- रश्मि से उपलब्ध कर जीवित रहते हैं।
2) **सुरादना--** चंद्रमा की उत्पति सूर्य से मानी गई है, चंद्रमा में जो शीत किरणें हैं, वे सूर्य रश्मियाँ हैं, जिनसे अमृत की रक्षा होती है, इन किरणों को सुरादना कहते हैं।
3) **उदन्वसु--** इस सूर्य रश्मि से मंगल ग्रह का आविर्भाव हुआ। इससे प्राणीमात्र में रक्त संचार होता है, ये समस्त प्रकार के रक्तदोषों से मुक्त कराकर आरोग्य,

ऐश्वर्य, तथा तेज का अभ्युदय करती हैं।

4) **विश्वकर्मा--** यह बुध ग्रह का निर्माण करती है। यह शुभचिंतक ग्रह हैं, इससे मानसिक उद्विग्नता शांत होकर मानसिक रोगों का उपचार करती है।
5) **उदावसु--** इससे वृहस्पति ग्रह निर्मित होते हैं। वृहस्पति प्रत्येक प्राणी के अभ्युदय, श्रेयस प्रदाता हैं। इसके प्रभाव से उत्थान- पतन होता है। इन सूर्य रश्मियों के सेवन मात्र से अनुकूल वातावरण निर्मित होता है।
6) **विश्वव्यचा--** इन रश्मियों से शुक्र और शनि दोनों ग्रह उत्पन्न हुए। इन दोनों से ही जीवन और मृत्यु नियंत्रित होती है। शुक्र सौंदर्य और संसाधनों से धनधान्य करता है। शनि मोक्ष प्रदान करते हैं।
7) **हरिकेश--** आकाश के संपूर्ण नक्षत्र इन रश्मियों से उत्पन्न हुए हैं। समस्त भौतिक-अभौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति इसी से होती है।

पृथ्वी के आराध्य देव भगवान सूर्य हैं। अतः हमारे ऋषि- मुनियों ने उनकी स्तुति में सैकड़ों मंत्रों की उद्भावना की है, जिनसे लोक-कल्याण हो सके। इनमें साथ विषय प्रमुख हैं-- (क) अंधकार का नाश (ख) राक्षसों का नाश (ग) दुखों और रोगों का नाश (घ) नेत्र- ज्योति की वृद्धि (ङ) चराचर की आत्मा (च) आयु की वृद्धि (छ) लोकों का धारण

क) अंधकार का नाश-- ऋग्वेद में सौर्य ऋषि की प्रार्थना है-- हे सूर्य देव! आप जिस ज्योति से अंधकार का नाश करते हैं तथा प्रकाश से समस्त संसार में स्फूर्ति उत्पन्न कर देते हैं, उसी से हमारा समग्र अन्नों का अभाव, यज्ञ का अभाव, रोग और कुस्वप्नों के कुप्रभाव को दूर कीजिए।

ख) महर्षि अगस्त्य ने ऋग्वेद में मंत्र दिया--

" उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
अदृष्टान्त्सर्वाअजम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः।

अर्थात--(सबको दीखने वाले, न दीखने वाले राक्षसों को नष्ट करने वाले, सब रजनीचरों और राक्षसियों को मारते हुए सूर्य नारायण उदित हो रहे हैं।)

ग) रोगों का नाश--- प्रस्कण्व ऋषि की सूर्यदेव की ऋग्वेद की प्रार्थना शरीर के पीलिया तथा हृदय रोगों के लिए विशेष लाभप्रद है।

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृदयरोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय।

घ) नेत्र ज्योति--- अथर्वा ऋषि ने अथर्ववेद (5/24) में बताया है कि-- जैसे अग्नि वनस्पतियों के, सोम लताओं के, वायु अंतरिक्ष के तथा वरूण जल

के अधिपति हैं, वैसे ही सूर्यदेव नेत्रों के स्वामी हैं, वे मेरी रक्षा करें। " "सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु"

ङ) **चराचर की आत्मा--** वैदिक ऋषियों ने अपनी अगाध और प्रगाढ़ साधना से यह प्रतिपादित किया कि सूर्य का विश्व में वही स्थान है, जो शरीर में आत्मा का। सूर्यदेव जड़-चेतन पदार्थों की आत्मा हैं।

च) **आयु वर्धक---** यजुर्वेद (36/24) में सूर्य से दीर्घायु का प्रत्यक्ष संबंध दिखाया गया है।

" तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः जीवेम शरदः शतम्।

छ) **लोक- धारण---** वैदिक ऋषि इस बात को सम्यक अनुभव करते थे कि लोक- लोकान्तर भी सूर्यदेवता द्वारा धारण किए जाते हैं। ऋग्वेद 10/170/4 में इसका उल्लेख है।

विभ्राजन्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः।
येनेमा विश्वाभुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता।

आज के समय में शहरों में सूर्य- दर्शन भी नहीं हो पाता। समाज में बढ़ती हुई अवसाद की बीमारी का एक बहुत बड़ा कारण यह भी है कि -- हम प्रकृति से दूर ही नहीं, अदृश्य होते जा रहे हैं। सूर्य महोत्सव (छठ महोत्सव)प्रकृति की लौटने का आमंत्रण है, जिसमें गन्ने की मिठास, केले की पौष्टिकता, सिघाड़े का स्निग्धता, नारियल की जलीय संपदा, फूल- फलों से सजी दौरियों पर लाल- पीले ओहार मानो देवलोक धरती पर उतर आया हो।

शास्त्रीय विधियों से लेकर लोकविधियों तक समाहित हैं सूर्य। देवभाषा से लोकभाषा तक उनकी यशोगाथा का विस्तार है। कहते हैं कि छठ व्रत का आरंभ सीता जी ने मुद्गल ऋषि के कहने से आरंभ किया था, तब से इसे गंगा की तरह अविरल प्रवाहित होते देख कर मन गा उठता है----

आठ ही काठ के कोठरिया हे दीनानाथ।
रूप सोना लागल केवाड़।
ताहि ऊपर सुतले आहो दीनानाथ।
दुखिया केवड़िया धइले खाड़।
चदर उघारि जब देखले हो दीनानाथ।
कवन संकट पड़ल तोहार।
नैना संकट पड़ले मोरे हो दीनानाथ।

एहि से केवड़िया धइले खाड़।

सूर्य नारायण सबका कल्याणार्थ नित्य सुलभ और सजीव उपस्थित हैं। हम उनसे कितना और किस तरह जुड़ पाते हैं, यह हमारे उपर निर्भर है। सूर्य के द्वादश नाम के साथ--- नित्य का आरंभ करें।

आदित्यः प्रथमं नाम द्वितीयं तु दिवाकर।
तृतीयं भास्करः प्रोक्तं चतुर्थं तु प्रभाकर।
पंचमं तु सहस्त्रांशु षष्ठं त्रैलोक्य लोचनः।
सप्तमं हरिदश्वश्च अष्टमं विभावसुः।
नवमं दिनकरः प्रोक्तो दशमं द्वादशात्मकः।
एकादशं त्रयोमूर्तिर्द्वादशं सूर्य एव च।

डॉ शुभदा पांडेय
(वरिष्ठ साहित्यकार व शिक्षाविद्)

□□□

साहित्य और संस्कृति में पीपल और पर्यावरण

वृक्षों का मनुष्य के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। हम ऐसे जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते, जिसमें वृक्ष नहीं हो। वृक्षों से हमें अनेक ऐसे परिदृश्य मिलते हैं, जिससे हमारा जीवन गतिशील होता है। किसी ने उसकी निस्पृहता, उदारता और साधुवृति को सम्मान दिया, तो किसी ने इनकी परोपकारिता पर प्रकाश डाला।

कबीर कहते हैं ------

वृक्ष कबहु नहिं फल भखै नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने संतन धरे शरीर।

तुलसी ने पीपल के पत्तों से मन की चंचलता की तुलना की ----

पीपर पात सरिस मन डोला।

इसके साथ ही उत्तरकाण्ड में भी पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान करने की बात कही गई है ---

पीपर तरु तर ध्यान जे करई।
जोग जग्य पाकरि तर करई।

वृक्षों का एक सीधा संबंध हमारे स्वास्थ्य से भी है। वृक्षों और पौधों की हरियाली, फूल, फल, एक ओर जहां मन को लुभाती है, वहीं दूसरी ओर छाया, और जड़ी बूटी देकर हमें जीवन के योग्य बनाती है। हमारे दूषित वायु को दूर करने में इनका बहुत बड़ा योगदान है। ये हमेशा हमें प्राणदायक आक्सीजन प्रदान करते हैं। यही वृक्ष पर्यावरण को संतुलित करने में योगदान देते हैं। कुछ वृक्ष स्वयं अपनी वंशावली बढ़ाने में सक्षम हैं, तो कुछ को प्रयास करके विकसित किया जाता है। पहले वृक्षों के बचाव की ओर लोग अधिक अग्रसर थे। मनुष्य संतोषी था, विकास के लिए प्रकृति का शोषण नहीं होता था। समय के आगे बढ़ने के साथ हम इन वृक्षों के लिए क्रूर होते गए। यह परिवर्तन विकास की कल्पना से आया जिसने हमें हरियाली के बदले बीहड़ता दी। आक्सीजन के बदले दमघोंटू परिवेश दिया।

विकास का अपना कोई स्वरूप नहीं होता, यह किसी न किसी के बलि लेकर पनपता है। राजमार्ग, सड़कें, शहरीकरण, जनसंख्या आदि वृक्षों के लिए भीषण काल बनकर आते हैं।

पीपल को हिंदी में पीपल या पीपर, संस्कृत में पिप्पल, अश्वत्थ, चलपत्र, बोधिद्रुम

कहते हैं।

हमारे पौराणिक ग्रंथों में इसकी बहुत महत्ता गाई गई है। मांगलिक कार्य हों या धार्मिक सभी में इसकी आवश्यकता पड़ती है। इसे वृक्षों का राजा भी कहते हैं।

पद्मपुराण में लिखा है कि - पीपल वनस्पति जगत का महानतम वृक्ष है। इसलिए इसे वृक्षराज भी कहते हैं। इसी तरह विष्णु पुराण में भी इसे वंदनीय वृक्ष माना जा रहा है।

अनेक धार्मिक व पौराणिक में इस बात का उल्लेख है कि - पीपल के वृक्ष में सैकड़ों गंधर्व एवं यक्ष्यादि अपनी शक्तियों के साथ विद्यमान रहते हैं। इसलिए इनका अनादर भूल कर भी नहीं करना चाहिए। इसके प्रत्येक अंग में देवताओं का वास होता है।

गीता के दसवें अध्याय के 26 वें श्लोक में कहा गया है कि --(सभी वृक्षों में पीपल मैं ही हूं)

अश्वत्थ: सर्व वृक्षाणं देवर्षीणां च नारद:।
गन्धर्वाणां चित्ररथ: सिद्धानां कपिलो मुनि:।

अथर्ववेद में पीपल के महत्व पर निरूपण करते हुए लिखा है कि --' तीनों लोकों में देवतागण सदैव पीपल में निवास करते हैं। अतः यह वृक्ष परम पूजनीय है। '

ब्रह्मवैवर्त पुराण में तथा पद्म पुराण में पीपल के संबंध में एक कथा आती है। एक बार देवताओं और राक्षसों में भयंकर युद्ध हुआ, देवतागण पराजित होने की स्थिति में थे। उन्हें पलायन की स्थिति में देख कर विष्णु जी ने पीपल के वृक्ष का आश्रय लिया तथा अपने को राक्षसों से बचाया। अतः पीपल के पूजे जाने पर विष्णु की पूजा स्वत: ही हो जाती है।

जातक कथाओं में तथा प्राचीन ग्रंथों में अनेक प्रेरक प्रसंग हैं, जो पीपल से संबंधित हैं। महात्मा बुद्ध ने पीपल के वृक्ष के नीचे ही योगसिद्धि को प्राप्त किया, जिसे बोधिवृक्ष की संज्ञा दी गई है।

इसी तरह श्रीलंका के अनुराधापुर में भी एक विशाल पीपल का वृक्ष है जो कि बौद्ध धर्म के अनुयायियों का आस्था का केंद्र है।

बौद्ध धर्म के हर देश के अनुयायियों में पीपल को अपार श्रृद्धा की दृष्टि से देखा जाता है।

स्कंद पुराण में यह बात कही गई है कि पीपल के वृक्ष के नीचे ही भगवान विष्णु

का जन्म हुआ, श्रीविष्णु को आश्रय देने के कारण इसकी पवित्रता परम पूजनीय है। यहां तक कहा गया है कि - जिन व्यक्तियों के पुत्र नहीं हों, यदि वे पीपल को ही अपना पुत्र मान लें, तो वे निरवंश नहीं कहलाएंगे। जिसने वर्षों तक वह वृक्ष रहेगा, उतने वर्षों तक, उस व्यक्ति का वंश चलता रहता है।

एक रोचक प्रसंग तैत्तिरीय ब्राह्मण में आता है ---एक बार अग्नि देवता अन्य देवगणों से रूष्ट होकर कहीं अलग स्थान पर चले गए। तमाम देवतागण उन्हें खोजने लगे। अग्नि देवता ने छिपे रहने के लिए अपना रूप भी बदल दिया और अश्व के रूप में पीपल के वृक्ष में एक वर्ष तक छिपे रहे। इसी कारण पीपल का एक नाम अश्वत्थ भी है।

भारतीय संस्कृति में इस वृक्ष को त्रिदेव की संज्ञा दी गई है। कहा गया है -----

मूले ब्रह्मा त्वचा विष्णु शाखायां तु महेश्वर:।
पत्रे- पत्रे देवाणां वासुदेवाय नमोस्तुते।

केवल इसकी पूजा कर देने मात्र से तीनों देव प्रसन्न हो जाते हैं। वेदों में यज्ञ के सैकड़ों महत्व बतलाए गए हैं, जिसमें मानव जीवन का कल्याण निहित है। उसी में यह भी कहा गया है कि -- केवल पीपल की पूजा कर देने मात्र से सैकड़ों यज्ञों का पुण्य अर्जित होता है।

आध्यात्मिक जगत के अलावा व्यहारिक जीवन में भी इसकी विशेषता वरेण्य हैं। पीपल ही एक मात्र ऐसा वृक्ष है जो चौबीस घंटे आक्सीजन प्रदान करता है। नित्य निरंतर प्राणवायु देने वाला यह वृक्ष वैज्ञानिकों के लिए भी आकर्षक है। इसके नीचे रात्रिकाल में भी विश्राम किया जा सकता है।

असंख्य खगचर और जीवों का आश्रयदाता है यह वृक्ष, उनके रहने, खाने, किल्लोल करने, उड़ान भरने, वंशवृद्धि आदि के लिए यह पालनहार वृक्ष है। इनकी पत्तियों पर कभी कीड़े नहीं लगते हैं। संपूर्ण वनस्पति विज्ञान में पीपल ही एकमात्र ऐसा वृक्ष है, जिसका नाड़ी विन्यास संपूर्ण रूप में पाया जा सकता है। इस वृक्ष की आयु भी बहुत अधिक होती है। 500 साल तक ये सहज ही बने रहते हैं।

एक और रोचक तथ्य है कि - पीपल के बीज धरती पर सीधे गिर कर भी अंकुरित नहीं होते हैं, किसी पक्षी के माध्यम से ही इनका पौधे विकसित होते हैं। इनके पत्तों का हिलाना बहुत आकर्षक होता है। इनकी प्रवृत्ति अग्नि मूलक होती है, अतः इनके जलावनी से भोजन नहीं बनाया जा सकता। वरना उस भोजन की तासीर अतिउष्ण हो जाएगी।

सूर्यलोक की अनेक शक्तियों का यहां निवास होता है, जिनमें भूत- प्रेत, यक्ष, आरूणी तथा 20 हजार यक्षणियों का निवास होता है। इसलिए इसके नीचे किए यज्ञ से सकल मनोरथ पूर्ण होते हैं।

पीपल की जड़ें बहुत मजबूत होती हैं। ये ज़मीन के अंधर धंस कर, घना जाल सा बना लेती हैं, कुछ प्रमुख जड़ें ऊपर से भी देखी जा सकती हैं। इसकी शाखाओं पर ही पुष्प लगते हैं, जो गोल घुंडी के समान होते हैं। ये आसानी से फूट जाते हैं, जिनसे बीज निकलते हैं।

पीपल का वृक्ष जहां रहता है वहां सकारात्मक ऊर्जा संचरित होती है। प्राचीन ग्रंथों में कहा गया है कि

भवनस्य पूर्व दिग्भागे वट: सर्वकामिका:।
उदुम्बरस्तथा याम्ने वाकण्यां पिप्पल: शुभं।।
प्लक्षश्चोत्तरतो धन्यो विपरीतास्तु वर्जयेत्।

अर्थात - किसी भी भवन के पूर्व में बरगद का वृक्ष, पश्चिम में पीपल, उत्तर में पाकड़ तथा दक्षिण में गूलर का होना मंगलकारी होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पर्यावरण का पिता है पीपल।

डा. शुभदा पांडेय
(वरिष्ठ साहित्यकार व शिक्षाविद्)

□□□

महाकुंभ गुरु-संस्कार का महोत्सव

भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान बहुत उच्च और श्रेष्ठ माना गया है। वह मनुष्य के जीवन को शरीर नहीं रहने देता। कायेत्तर जगत में ले जाकर वह इस नश्वर शरीर को शाश्वत बनाता है, जो मनुष्य का अभिष्ट और अंतिम लक्ष्य होता है। संसार की अभिप्साओं से इतर भी सोचने की दृष्टि देता है, जिसे हम ज्ञान कहते हैं। ज्ञान प्रकाश का स्वरूप है। जैसे प्रकाश की उपस्थित में सब कुछ स्पष्ट और यथार्थ दिखने लगता है। महाकुंभ में अलग-अलग शिविरों में अलग-अलग संत- महात्माओं के प्रवचन, उपदेश, आध्यात्मिक चर्चाएँ चलती रहती हैं। कल्पवास में अनेक भक्त महीने भर गुरू शिविर या आश्रम में रहकर ज्ञानार्जन करते हैं। गुरु के सान्निध्य में प्राप्त ज्ञान हमारे मानवीय अंतर्निहित गुणों का विकास होता है। हम काया और माया के जगत में कुछ अलौकिक तत्वों के अनुसंधान की ओर अग्रसर होते हैं। इसीलिए कहा गया है------

गुरू ब्रह्मा गुरू विष्णु गुरू देव महेश्वर।
गुरू साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरूवे नमः।

यद्यपि किसी व्यक्ति की प्रथम गुरु मां होती है, जहाँ संस्कारों के बीज बोए जाते हैं। भाषा का प्रादुर्भाव होता है। परिवार के अनुशासन की पाठशाला है मां। गुरु इन गुणों को पल्लवित- पुष्पित कर बालक का सामाजिकरण करता है। अब वह समूह में जीना- रहना सीखता है। और गुरु कुम्हार की तरह उसे तराशता जाता है। उसके गुणों के माध्यम से उसका विकास और कार्यक्षेत्र का निर्धारण करने में सहयोग करता है। वह सद्गुणों की परख कर उसे गढ़ता है फिर उसे सांस्कृतिक रूप विकसित करता है और दुर्गुणों का नाश करता है।

इसीलिए उसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश की संज्ञा दी गई है।

गुरू केवल साक्षरता का पोषक नही होता। ना ही केवल पाठ्यक्रम को पूरा कर अपने दायित्व को परिपूर्ण करता है। साक्षरता तो पहला सोपान है। आगे वह जीवन के रहस्यों का पटाक्षेप करता है। पुस्तक के अलावा अपने आचरणों से सिखाता है। उसका दायित्व वर्ग पूरा होने पर समाप्त नहीं हो जाता, बल्कि आजीवन तादात्म्य बना रहता है, क्यों कि वह जीवन- पाठशाला का समर्थवान शिक्षक होता है। रामचरितमानस में गुरु की विस्तृत विवेचना की गई है। उसके आदर्शों, दायित्वों और सामाजिक दायित्वों को पूरा करने के लिए, उसे समय-समय पर आमंत्रित किया जाता है। उसकी वंदना से ही मानस का आरंभ हुआ है, जिसमें उसकी विशेषताओं का गुणगान किया गया है। तुलसीदास जी लिखते हैं ---------

बंदउं गुरु पद कंज कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर।

बंदउं गुरुपद पदुम परागा, सुरूचि सुबास सरस अनुरागा।
अमिय मूरिमय चूरन चारु, समन सकल भव रुज परिवारू।
सुकृति शंभु तन बिमल बिभूति, मंजुल मंगल मोद प्रसूती।
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी, किए तिलक गुन गन बस करनी।
श्री गुरु पद नख मनि गन जोती, सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
दलन मोह तम सो सुप्रकासु, बड़े भाग उर आवइ जासू।
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के, मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।
सूझहिं रामचरितमानस मनि मानिक, गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।

जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन, भूतल भूरि निधान।
गुरू पद रज मंजुल अंजन, नयन अमिय दृग दोष बिभंजन।

अर्थात-(मैं उन गुरू महाराज के चरण कमल की वंदना करता हूँ, जो कृपा के समुद्र और नर रूप में श्री हरि ही हैं और जिनके वचन महामोह रूपी घने अंधकार के नाश करने के लिए सूर्य - किरणों के समूह हैं। मैं गुरू महाराज के चरण कमलों की रज की वंदना करता हूँ, जो सुरूचि सुबास और अनुराग के रस से परिपूर्ण हैं। वह अमर मूल (संजीवनी जड़ी) का सुंदर चूर्ण हैं, जो संपूर्ण भवरोगों के परिवार को नाश करने वाला है। गुरू रज सुकृती (पुण्यवान पुरूष) रूपी शिव शरीर पर सुशोभित निर्मल विभूति है और सुंदर कल्याण और आनंद की जननी है। भक्त के मन रूपी सुंदर दर्पण के मैल को दूर करने वाली है और तिलक करने से गुणों के समूह को वश में करने वाली है। श्री गुरु महाराज के चरण- नखों की ज्योति मणियों के प्रकाश के समान है, जिसके स्मरण करते ही हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। वह प्रकाश अज्ञान रूपी अंधकार का नाश करने वाला है, वह जिसके हृदय में आ जाता है, उसके बड़े भाग्य हैं। उसके हृदय में आते ही हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसार रूपी रात्रि के दोष- दुख मिट जाते हैं, एवं रामचरित रूपी मणि और माणिक्य, गुप्त और प्रकट जहां जो जिस खान में है, सब दिखाई पड़ने लगते हैं। जैसे सिद्धांतांजन को नेत्रों में लगा कर साधक, सिद्ध और सुजान पर्वतों, वनों और पृथ्वी के अंदर कौतुक से ही बहुत सी खानें देखते हैं। श्री गुरु महाराज के चरणों की रज कोमल और सुंदर नयनामृत -अंजन हैं, जो नेत्रों के दोषों का नाश करने वाला है। उस अंजन से विवेक रूपी नेत्रों को निर्मल करके मैं संसार रूपी बंधनों से छुड़ाने वाले श्री राम चरित्र का वर्णन कर रहा हूँ।)

राजा दशरथ के प्रकरण में भी अनेक मार्मिक प्रसंग हैं, जब गुरू वशिष्ठ को अपना

वरेण्य मान कर उनसे सलाह और समर्थन लेते रहते हैं। जब लंबे समय तक उन्हें कोई संतान नहीं होती तब वे निराश होकर गुरू का आश्रय लेते हैं।

एक बार भूपति मन माहि भै गलानि मोरे सुत नाहीं।
गुर गृह गयउ तुरत महिपाला, चरन लागि कर विनय विशाला।
निज दुख सुख सब गुरूहिं सुनायउ, कहि बसिष्ठ बहुबिधि समझायउ।

गुरू अपने शिष्य के हर प्रकार के संतापों का शमन करता है। और उसके सुख समृद्धि के सुयोग बनाने का यत्न भी करता है।

मनुष्य के सोलहों संस्कारों में गुरु का सामीप्य अनिवार्य है। जन्मोत्सव में सब प्रकार से मंगलादि संपादित करके पुनः नामकरण में उनका आगमन होता है। और सभी बालकों की गुणवत्तायुक्त नामकरण होता है।

नामकरण कर अवसरु जानी, भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी।
करि पूजा भूपति अस भाषा, धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा।
इन्ह के नाम अनेक अनूपा, मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा।

लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बशिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार।

धरे नाम गुर हृदय बिचारी, बेद तत्व नृप तव सुत चारी।

कुमारावस्था में पुन: गुरु यज्ञोपवित संस्कार करवा कर, उन्हें धर्म और ब्रह्मचर्य से युक्त शिक्षा की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं।

भए कुमार जबहिं सब भ्राता, दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता।

उस समय गुरु के आश्रम में रहकर शिक्षा प्राप्त करने का प्रावधान था। मानस में भी इसका उल्लेख है और राम जब विद्यारंभ करते हैं तो, बहुत कम समय में ही वे समस्त विद्याओं में निपुण हो जाते हैं।

गुरुगृह गए पढ़न रघुराई, अलप काल बिद्या सब आई।
जाकी सहज स्वास श्रुति चारी, सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी।

राजा के पुत्र होने के बावजूद उनकी दिनचर्या में गुरु दिनचर्या का प्रथम अंग थे। सबसे पहले उनका अभिवादन करना ही उनका कर्तव्य था।

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा,
मातु पिता गुरु नावहिं माथा।

गुरु का स्थान सर्वोच्च और पूज्य था, किसी प्रकार के उत्सव, समारोह और

मांगलिक संस्कारों में उन्हें उच्च आसन और संसाधन दिए जाते थे। राम- विवाह के लिए जनकपुर जाते समय गुरू वशिष्ठ की सवारी का वर्णन इस प्रकार से किया गया है।

तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी, जोते रबि हय निंदक बाजी।
दोउ रथ रुचिर भूप पहिं आने, नहिं सारद पहिं जाहिं बखाने।
राज समाजु एक रथ साजा, दूसर तेज पुंज अति भ्राजा।
तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहुं हरषि चढ़ाई नरेसु।

(**अर्थात-** दोनों सुंदर रथ वे राजा दशरथ के पास ले गए, जिनकी सुंदरता का वर्णन सरस्वती से भी नहीं हो सकता। एक रथ पर राजसी सामान सजाया गया था और दूसरा जो तेज का पुंज और अत्यंत ही शोभायमान था। उस सुंदर रथ पर राजा गुरु बशिष्ठ जी को हर्षपूर्वक चढ़ा कर अपने रथ पर चढ़े।

इसी तरह राज्याभिषेक के समय गुरू वशिष्ठ के सम्मान और वरीयता का चित्रण कुछ इस तरह किया गया है। गुरू राजकीय कार्यों का भी सलाहकार, नियंत्रक, स्वस्तिवाचक, शास्त्रीय विधि-विधान का नियंता होता था। साथ ही राजा और प्रजा के खुशहाली के लिए अर्चना- पूजा में संलग्न रहता था। प्राकृतिक संतुलन के लिए उसके प्रयास जारी रहते थे।

प्रथम तिलक वशिष्ठ मुनि कीन्हा, पुनि सब भाइन्ह आयसु दीन्हा।

गुरू की भूमिका केवल अक्षर-ज्ञान तक सीमित नहीं थी। वह ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करता था, जो देश और समाज के लिए अपने दायित्व पूरे करने में अग्रणी हो। परोपकारी, न्यायप्रिय, संस्कारी और निष्कलुष शिष्यों की संरचना उसकी प्राथमिकता होती थी। तुलसीदास जी लिखते हैं------

हरइ शिष्य धन शोक न हरइ
सो गुरू घोर नरक महु परइ।

गुरू हमारे विकारों को हरने का हर संभव प्रयास करता था। क्षमा, उदारता, शीलवान, निर्भीक गुणों से युक्त गुरू शिष्यों के अपराध को लेकर संवेदनशील रहता था और प्रार्थना भी करता था।

गुर नित मोहि प्रबोध दुखित देखि आचरन मम।
मोहि उपजइ अति क्रोध दंभित नीति कि भावई।

एक बार गुरू लीन्ह बुलाई, मोहि नीति बहु भांति सिखाई।
सिव सेवा कर फल सुत सोई, अबिरल भगति राम पद होई।

एक बार हरि मंदिर जपत रहेऊँ हरि नाम।
गुर आयउ अभिमान ते उठि नहिं कीन्ह प्रनाम।
सो दयाल नहिं कहेउ कछु, उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुर अवमानता सहित नहिं सके महेस।

गुरू का सम्मान सर्वोपरि है। उसके अपमान को शिव भी सहन नहीं कर सकते।

इस तरह गुरु का स्थान सर्वोच्च और देदीप्यमान है। वह विषयों का ज्ञान तो देता ही है। साथ ही शिष्य को एक सभ्य नागरिक, राष्ट्र के लिए समर्पित जीवन जीने वाला, परोपकारी और विश्व बंधुत्व की भावना से उत्प्रेरित मानव बना कर, उसे दैविक, दैहिक, भौतिक तापों से मुक्त करता है। महाकुंभ में हमारी आस्था की ज्ञान गंगा जिस उच्चतम तपश्चर्या जीवन- गिरि से प्राप्त होती है, वह गुरु ही है।

डॉ शुभदा पांडेय।
(वरिष्ठ साहित्यकार व शिक्षाविद्)
आगरा-- उत्तर प्रदेश

□□□

महाकुंभ में राम की अलौकिक वंशगाथा

गंगा अवतरण की बात जब जब उठती है, तो भगीरथ का नाम बहुत निष्ठा के साथ लिया जाता है। यहाँ तक कि उनके अदम्य प्रयास को भगीरथ प्रयास का नाम ही दे दिया गया। यही वो महान ऋषिकर्मी थे, जो अपने तपोबल से गंगा को धरती पर ले आए और गंगा जहाँ- जहाँ होकर गुजरीं तीर्थ बनते गये। तीर्थराज प्रयाग का महात्म्य सर्वश्रेष्ठ और महनीय है। महाराज भगीरथ राम के ही पूर्वज थे यह जानकर प्रयागराज की आस्था अनेक गुना बढ़ जाती है।

जब भी राम कथा की बात चलती है - एक कहावत हर व्यक्ति के मुंह में ही रहती है ---

रघुकुल रीत सदा चलि आई।
प्राण जाए पर वचन न जाई।

राम के मर्यादा पुरुषोत्तम स्वरूप की व्याख्या बिना रघुकुल की चर्चा के पूरी नहीं हो सकती। उनके पूर्वज इतने महान और दिव्य गुणों की खान थे कि - उनके कृतित्व आज तक हर भारतीय जनमानस की ज़ुबान पर हैं।

रघुवंश की महिमा अपरंपार है, इस कुल में एक से बढ़कर एक तपस्वी, मनस्वी और उदारचेत्ता राजा हुए हैं, जिन्होंने लोकहित में अपनी काया का उत्सर्ग करना श्रेयस्कर समझा।

धनुष भंग प्रसंग में लक्ष्मण कहते हैं ---

कहि न सकत रघुबीर डर लगे बचन जनु बान।
नाइ राम पद कमल सिरु बोले गिरा प्रमान।

रघुबंसिन्ह महुं जहं कहु होई।
तेहिं समाज अस कहइ न कोई।

उनकी कहानी में उनके वंश - परिपाटी का उल्लेख महत्वपूर्ण है। यह संपूर्ण कथा सूर्यवंशी राजाओं का है, जिन्होंने राज्य की सेवा की, धरती को माता समझा, कभी इसे भोग और विलास की वस्तु नहीं समझा।

वाल्मीकि रामायण के बाल कांड के सर्ग 59 से 72 में ब्रह्मा से भगवान राम तक के वंश का पूर्ण विवरण विस्तार से दिया गया है। जो संक्षेप में इस प्रकार से है।

पुराणों और इतिहासकारों के अनुसार आदि रूप ब्रह्मा जी से मरीचि का जन्म

हुआ। मरीचि के पुत्र कश्यप हुये। कश्यप के विवस्वान और विवस्वान के वैवस्वतमनु हुये। वैवस्वतमनु के पुत्र इक्ष्वाकु थे। इसी इक्ष्वाकु ने अयोध्या को अपनी राजधानी बनाया और इस प्रकार इक्ष्वाकु कुल की स्थापना की। इक्ष्वाकु के पुत्र कुक्षि हुये। कुक्षि के पुत्र का नाम विकुक्षि था।

विकुक्षि के पुत्र बाण और बाण के पुत्र अनरण्य हुये। अनरण्य से पृथु और पृथु और पृथु से त्रिशंकु का जन्म हुआ।

त्रिशंकु की कथा बहुत प्रचलित और रोचक है। जिसमें वर्णन आता है कि -------

सूर्य वंश के राजा पृथु के पुत्र सत्यव्रत के रूप में जन्मे राजा त्रिशंकु। राजा सत्यव्रत जब वृद्ध होने लगे तो उन्हे राज-पाट त्याग कर अपने पुत्र हरिश्चंद्र को अयोध्या का राजा घोषित कर दिया। राजा सत्यव्रत एक धार्मिक पुरुष थे इसलिए उनकी आत्मा स्वर्ग के योग्य थी परंतु उनकी इच्छा सशरीर स्वर्ग जाने की थी। इस इच्छा की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने गुरु ऋषि वशिष्ठ को आवश्यक यज्ञ करने की प्रार्थना की। ऋषि वशिष्ठ ने यज्ञ करने से यह समझते हुये मना कर दिया कि सशरीर स्वर्ग प्रवेश प्रकृति के नियम के विरुद्ध है। सत्यव्रत अपनी ज़िद पर अड़े रहे और इच्छा की पूर्ति के लिए ऋषि वशिष्ठ के ज्येष्ठ पुत्र शक्ति को अवाश्यक यज्ञ करने के लिए धन एवं प्रसिद्धि का लालच दिया। सत्यव्रत के इस दुस्साहस को बहुत समझाने पर भी, जब वो नहीं माने तो, शक्ति को क्रोधित कर दिया और शक्ति ने सत्यव्रत को त्रिशंकु होने का श्राप दे दिया। त्रिशंकु को राज्य छोड़ कर वन भटकने के लिए मजबूर होना पड़ा।

वन में भटकते हुये त्रिशंकु की भेंट ऋषि विश्वामित्र से हुई जिनसे उसने अपनी परेशानी बताई। ऋषि विश्वामित्र, जो ऋषि वशिष्ठ से प्रतिद्वंद्वता रखते थे, त्रिशंकु की प्रार्थना स्वीकार कर ली एवं उसे सशरीर स्वर्ग पहुंचाने के लिए आवश्यक यज्ञ शुरू कर दिया। यज्ञ के प्रभाव से त्रिशंकु स्वर्ग की ओर उठने लगे। इस अप्राकृतिक घटना से स्वर्ग में खलबली मच गयी। सभी लोग दौड़े- दौड़े इंद्र के पास गए। भगवान इन्द्र के नेतृत्व में देवताओं ने त्रिशंकु को स्वर्ग प्रवेश करने से रोक दिया एवं उसे वापस पृथ्वी की ओर फेंक दिया। इस बात से क्रोधित ऋषि विश्वामित्र ने अपनी शक्तियों का प्रयोग कर के त्रिशंकु का गिरना रोक दिया जिससे त्रिशंकु बीच में लटक गए।

लटके त्रिशंकु ने विश्वामित्र से सहायता की प्रार्थना की। विश्वामित्र ने अपनी शक्तियों का प्रयोग कर बीच में ही एक नया स्वर्ग बना दिया और त्रिशंकु को श्राप से मुक्त करते हुये इस नए स्वर्ग में भेज दिया। त्रिशंकु, जो वापस सत्यव्रत बन गया था, को नए स्वर्ग का इन्द्र बनाने के लिए विश्वामित्र ने तपस्या प्रारम्भ की। इस तपस्या से चिंतित देवताओं ने विश्वामित्र को समझाया कि उन्होने सशरीर स्वर्ग प्रवेश की

अप्राकृतिक घटना को रोकने के लिए त्रिशंकु के स्वर्ग प्रवेश से रोका था। विश्वामित्र देवताओं के तर्क से सहमत हुये परंतु अब उनके सामने अपने वचन को पूरा करने कि दुविधा थी। विश्वामित्र ने देवताओं से समझौता किया कि वो अपनी तपस्या रोक देंगे और देवता सत्यव्रत को नए स्वर्ग में रहने देंगे, एवं सत्यव्रत इन्द्र की आज्ञा का पालन करेगा।

यह त्रिशंकु की कहानी है जो पृथ्वी एवं स्वर्ग के मध्य अपने लटके हुये स्वर्ग में है। भारत में त्रिशंकु शब्द का प्रयोग ऐसी ही परिस्थितियों के लिए किया जाता है। और यह कहानी इतनी लोकप्रिय हुई कि - कहावत बन गई।

त्रिशंकु के पुत्र धुन्धुमार हुये। धुन्धुमार के पुत्र का नाम युवनाश्व था। युवनाश्व के पुत्र मान्धाता हुये जो प्रथम् राजा थे जिन्होंने पूरी पृथ्वी पर विजय पाई थी। ये दिग्विजय कर संपूर्ण पृत्वी के भूपाल बने।

मान्धाता से सुसन्धि का जन्म हुआ। सुसन्धि के दो पुत्र हुये – ध्रुवसन्धि एवं प्रसेनजित। ध्रुवसन्धि के पुत्र भरत हुये। भरत के पुत्र असित हुये और असित के पुत्र सगर हुए, ये वही सगर हैं, जिन्हें भागीरथ के पूर्वज के लिए जाना जाता है, जिनको तारने के लिए वे गंगा को पृथ्वी पर लाए थे।

सगर के पुत्र का नाम असमंज था। असमंज के पुत्र अंशुमान तथा अंशुमान के पुत्र दिलीप हुए जो अपनी गौ सेवा के लिए विश्व विख्यात हुए। दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए, इन्हीं भगीरथ ने अपनी तपोबल से गंगा को पृथ्वी पर लाया। भगीरथ के पुत्र ककुत्स्थ और ककुत्स्थ के पुत्र रघु हुए। रघु के समान इस धरती पर कोई पराक्रमी राजा नहीं हुआ, अत्यंत तेजस्वी और पराक्रमी नरेश होने के कारण उनके बाद इस वंश का नाम रघुवंश हो गया।

महाराज रघु के बारे में कहा जाता है कि राजा दिलीप धनवान, गुणवान, बुद्धिमान और बलवान है, साथ ही धर्मपरायण भी थे। बस कमी थी तो यह कि, वो सभी वैभव से, प्रकार से सम्पन्न हैं परंतु उन्हें कोई संतान नहीं थी। संतान प्राप्ति का आशीर्वाद पाने के लिए दिलीप को गोमाता नंदिनी की सेवा करने के लिए कहा गया। एक बार एक तपस्वी राजा के अतिथि बन कर आए। उनके मन की कामना को भांप कर राजा अपनी रानी को उस तपस्वी के आश्रम में छोड़ आए। तपस्वी ने अपनी गलती मान कर बड़ा पश्चात्ताप किया और भक्तिपूर्वक रानी के चरण-स्पर्श कर राजमहल में भिजवा दिया।

महाराजा रघु ने एक बार दान में दी हुई चीज़ को वापस लेने से इनकार कर दिया। इस पर रानी ने राजा से निवेदन किया कि इससे अच्छा यह है कि आप मेरा सिर काट

लें। इस पर रघु ने सचमुच रानी का सिर काटने के लिए तलवार चला दी। किन्तु यह क्या! तलवार सिर से स्पर्श करते ही फूल बन कर बिखर गई। देवताओं ने उस राज-दम्पति की निष्ठा और कर्त्तव्य परायणता पर प्रसन्न होकर उन पर फूलों की वृष्टि करने लगे। महाराजा रघु ने अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी और जब धन न रहा तब कुबेर के पास गये। कुबेर ने आदरपूर्वक उनका स्वागत किया और उनकी इच्छा के अनुसार धन देकर विदा किया। रघु ने सारा धन याचकों में बाँट दिया। रघु के पराक्रम का वर्णन कालिदास ने विस्तारपूर्वक अपने ग्रन्थ 'रघुवंश' में किया है। अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को चुराने पर उन्होंने इन्द्र से युद्ध किया और उसे छुड़ाकर लाया था। उन्होंने विश्वजीत यज्ञ सम्पन्न करके अपना सारा धन दान कर दिया था। जब उनके पास कुछ भी धन नहीं रहा, तो एक दिन ऋषिपुत्र कौत्स ने आकर उनसे 14 करोड़ स्वर्ण मुद्राएं मांगी ताकि वे अपनी गुरु दक्षिणा दे सकें। रघु ने इस ब्राह्मण को संतुष्ट करने के लिए कुबेर पर चढ़ाई करने का मन बनाया। यह सूचना पाकर कुबेर घबराया और खुद ही उनका खज़ाना भर दिया। रघु ने सारा खज़ाना ब्राह्मण के हवाले कर दिया; परंतु उस ब्राह्मणपुत्र ने केवल 14 करोड़ मुद्राएं ही स्वीकारी।

रघु के पुत्र प्रवृद्ध हुये जो एक शाप के कारण राक्षस हो गये थे, इनका दूसरा नाम कल्माषपाद था। प्रवृद्ध के पुत्र शंखण और शंखण के पुत्र सुदर्शन थे। सुदर्शन के पुत्र का नाम अग्निवर्ण था। अग्निवर्ण के पुत्र शीघ्रग और शीघ्रग के पुत्र मरु हुये। मरु के पुत्र प्रशुश्रुक और प्रशुश्रुक के पुत्र अम्बरीष हुए। इनकी कथा भी बहुत जनप्रिय है। राजा अम्बरीष के घर में लक्ष्मी स्वयं इनके घर में इनकी पुत्री के रूप में अवतरित हुई। इनका नाम पड़ा-श्रीमती। श्रीमती बचपन से ही विष्णु को अपना पति मान कर इनकी आराधना करने लगी। अपने मोहक रूप और सौन्दर्य के लिए वह तीनों लोकों में प्रसिद्ध थी। श्रीमती का जन्म एक विशेष उद्देश्य को लेकर हुआ था। देवर्षि नारद को एक बार यह गर्व हो गया कि मैं मोह-माया से परे हूँ और उन्होंने कामदेव को जीत लिया है जबकि यह सब भगवान शिव की कृपा का फल था। मुझ पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। एक बार नारद ने अपने इस गर्व की चर्चा पर्वत नामक एक ऋषि से भी की। एक बार घूमते-घूमते नारद और पर्वत दोनों ऋषि राजा अम्बरीष के यहाँ पधारे। राजा ने उनका यथोचित आदर-सत्कार किया और अपनी पुत्री श्रीमती को आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। जब श्रीमती ने आशीर्वाद लेने के लिए दोनों ऋषियों को प्रणाम किया, तभी उन दोनों पर विष्णु की माया छा गई। वे दोनों श्रीमती का सौन्दर्य देख कर सारा ज्ञान भूल गये और उससे विवाह करने को दोनों आपस में लड़ने लगे।

राजा अम्बरीष को ऋषियों के इस व्यवहार पर बड़ा आश्चर्य और दुख हुआ।

श्रीमती के अनुरोध पर अम्बरीष ने उसके विवाह के लिए स्वयंवर की घोषणा कर दी। स्वयंवर की घोषणा सुन कर दोनों ऋषि वहाँ से चले गये। स्वर्ग में वापस जाकर भी नारद श्रीमती को भूल न सके और उससे विवाह करने के लिए विष्णु से अपना सुन्दर रूप देने की प्रार्थना की। इधर पर्वत ईर्ष्यावश विष्णु से यह अनुरोध करने आया कि स्वयंवर में जाने के लिए वे नारद को बन्दर का मुख दे दें। विष्णु ने पर्वत की यह बात मान ली और उन्होंने नारद को प्रभु विष्णु उन्हें हरि (बंदर) का रूप प्रदान कर देते हैं। नारद उत्साहित होकर स्वयंवर में पहुंचते हैं। सभी राजा उन्हें देखकर हंसने लगते हैं। नारद को कुछ समझ में नही आता है। सारे राजा नारद का उपहास करते हैं। नारद दर्पण में स्वयं का बंदर रूप देखकर क्रोधित हो जाते हैं। वे प्रभु विष्णु को श्राप देते हैं कि आपको भी धरती पर आना पड़ेगा और आप भी महिला के लिए वन-वन घूमेंगे।

इसका वर्णन रामचरित मानस में इस प्रकार से है ----

आनि देखाई नारदहिं भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुन दोष सब एहि कर हृदय बिचारि।

करौं जा**इ सोइ जतन बिचारी।**
जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी।
हरि सन मांगौ सुंदरताई।
होइहि जात गहरु अति भाई।
आपन रूप देहु प्रभु मोहीं।
आन भांति नहिं पावौं ओही।
जेहि समाज बैठे मुनि जाई।
हृदय रूप अहिमिति अधिकाई।
मर्कट बदन भयंकर देही।
देखत हृदय भा क्रोध भा तेही।

अम्बरीष के पुत्र का नाम नहुष था। नहुष के पुत्र ययाति और ययाति के पुत्र नाभाग हुये। पुराणों और इतिहासकारों के अनुसार, ययाति चन्द्रवंशी वंश के राजा नहुष के छः पुत्रों याति, ययाति, सयाति, अयाति, वियाति तथा कृति में से एक थे। याति राज्य, अर्थ आदि से विरक्त रहते थे इसलिये राजा नहुष ने अपने द्वितीय पुत्र ययाति का राज्याभिषेक करवा दिया। ययाति का विवाह शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी के साथ हुआ। देवयानी के साथ उनकी सखी शर्मिष्ठा भी ययाति के भवन में रहने लगे। ययाति ने शुक्राचार्य से प्रतिज्ञा की थी की वे देवयानी से भिन्न किसी और नारी से शारीरिक सम्बन्ध नहीं बनाएंगे। एक बार शर्मिष्ठा ने कामुक होकर ययाति को मैथुन प्रस्ताव

दिया। शर्मिष्ठा की सौंदर्य से मोहित ययाति ने उससे संबंध बनाया। इस तरह देवयानी से छुपाकर शर्मिष्ठा एवं ययाति ने तीन वर्ष बीता दिए। उनके गर्भ से तीन पुत्र लाभ मिलने के बाद जब देवयानी को यह पता चला तो उसने शुक्र को सब बता दिया। शुक्र ने ययाति को वचनभंग के कारण शुक्रहीन वृद्ध होनेका श्राप दिया।

ययाति की दो पत्नियाँ थीं। शर्मिष्ठा के तीन और देवयानी के दो पुत्र हुए। ययाति ने अपनी वृद्धावस्था अपने पुत्रों को देकर उनका यौवन प्राप्त करना चाहा, पर पुरू को छोड़कर और कोई पुत्र इस पर सहमत नहीं हुआ। पुत्रों में पुरू सबसे छोटा था, पर पिता ने इसी को राज्य का उत्तराधिकारी बनाया और स्वयं एक सहस्र वर्ष तक युवा रहकर शारीरिक सुख भोगते रहे।

तदनंतर पुरू को बुलाकर ययाति ने कहा – 'इतने दिनों तक सुख भोगने पर भी मुझे तृप्ति नहीं हुई। तुम अपना यौवन लो, मैं अब वाणप्रस्थ आश्रम में रहकर तपस्या करूँगा। ' फिर घोर तपस्या करके ययाति स्वर्ग पहुँचे, परंतु थोड़े ही दिनों बाद इंद्र के शाप से स्वर्गभ्रष्ट हो गए। अंतरिक्ष पथ से पृथ्वी को लौटते समय इन्हें अपने दौहित्र, अष्ट, शिवि आदि मिले और इनकी विपत्ति देखकर सभी ने अपने अपने पुण्य के बल से इन्हें फिर स्वर्ग लौटा दिया। इन लोगों की सहायता से ही ययाति को अंत में मुक्ति प्राप्त हुई।

नाभाग के पुत्र का नाम अज था। दशरथ के पिता सूर्य राजवंश के 38 वें राजा थे| वे सरयू नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित कौशल राज्य के राजा थे। सरयू नदी के उत्तरी किनारे स्थित कौशल राज्य का राजा सूर्य वंश का ही कोई दूसरा व्यक्ति था. अज की पत्नी और दशरथ की माता इंदुमती वास्तव में एक अप्सरा थीं लेकिन किसी शापवश धरती पर साधारण स्त्री वेश में रहने को विवश थीं। इसी रूप में इंदुमती का विवाह अज से हो गया और दशरथ पैदा हुए। एक दिन राजा अज इन्दुमती के साथ उद्यान में घूम रहे थे। तभी आकाश मार्ग से नारद जी जा रहे थे। अचानक उनकी वीणा से लिपटी देवलोक की पुष्पमाला हवा में उड़ती हुई वहाँ आई और इन्दुमती के कण्ठ में जा पड़ी। इससे इन्दुमती की उसी घड़ी मृत्यु हो गई। वह अपने शाप से मुक्त हो इंद्रलोक चली गई | तब अज पत्नी इंदुमती की मृत्यु देख शोक से रोने लगे। तभी नारद वहाँ प्रकट हुए तथा राजा को उन्होंने इन्दुमती के पूर्व जन्म की कहानी सुनाई। एक बार तृणविन्दु ऋषि की तपस्या भंग करने के लिए इंद्र ने हरिणी नामक अप्सरा को भेजा था। इस पर ऋषि ने हरिणी को मानवी जन्म का शाप दे दिया। हरिणी के अनुरोध करने पर ऋषि ने शाप से छूटने का उपाय भी बता दिया। स्वर्ग की पुष्पमाला के उसके कण्ठ में पड़ते ही इन्दुमती को सुरबाला होने की याद हो आई। इसीलिए वह देवलोक वापस चली गई।

अज इंदुमती से बहुत प्रेम करते थे और बहुत कोशिशों के बाद भी जब वे इंदुमती तक पहुंचने का कोई रास्ता नहीं समझ सके तो स्वेच्छा से अपने प्राण हर लिए.

उनकी मौत के वक्त दशरथ मात्र 8 माह के थे. कौशल के राजगुरु और राज पुरोहित वशिष्ठ के आदेश से गुरु मरुधन्वा ने दशरथ का पालन-पोषण किया और अज के राज में सबसे बुद्धिमान मंत्री सुमंत्र ने दशरथ के प्रतीक रूप में राज्य का कार्यभार संभाला. 18 वर्ष की उम्र में दशरथ ने कौशल जिसकी राजधानी अयोध्या थी, का भार संभाल लिया और दक्षिणी कौशल के राजा बन गए. वे उत्तरी कौशल को भी इसी में मिलाना चाहते थे. उत्तरी कौशल के राजा की एक बेटी थी कौशल्या. दशरथ ने उत्तरी कौशल के राजा से उनकी बेटी कौशल्या से विवाह करने का प्रस्ताव रखा. उत्तरी कौशल के राजा ने भी प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और इस तरह दशरथ-कौशल्या के विवाह के साथ दशरथ कौशल नरेश बन गए.

उन्हीं से युगावतार मर्यादा पुरुषोत्तम लोकनायक प्रभु श्री राम का जन्म हुआ।

भए प्रगट कृपाला दीन दयाला।
कौशल्या हितकारी।
हर्षित महतारी मुनि मन हारी। अद्भुत रूप बिचारी।

डा. शुभदा पांडेय।
(वरिष्ठ साहित्यकार व शिक्षाविद्)
मोबाइल नंबर ---9528269196

□□□

याज्ञवल्क्य ऋषि का प्रयागानुराग और राम कथा

रामकथा अकथ अगाध और अनंत है, ऐसा बड़े-बड़े ऋषि- मुनियों ने अपने चिंतन- मनन से प्राप्त अनुभवों के आधार पर बताया है। याज्ञवल्क्य ऋषि ने अपने समय के और सदैव के लिए वेदों, उपनिषदों, पुराणों के महान ज्ञाता थे। दार्शनिक तत्वों पर उनकी वृहद पकड़ थी, इसीलिए अन्य सभी ऋषि- मुनि ये चाहते थे कि उनका आगमन कुटिया में समय-समय पर होता रहे।

भरद्वाज ऋषि प्रयाग में रहते थे और उनकी राम के प्रति गूढ़ आस्था थी। प्रत्येक माघ में जब प्रयागराज में परम तपस्वी योगियों का आना होता तो, यह पावन स्थल और भी पवित्र हो जाता। एक बार इस अवसर पर याज्ञवल्क्य जी का आगमन हुआ और भरद्वाज मुनि ने इसे एक महान सुअवसर समझ उनसे निवेदन करके, उनके पाँव पकड़कर उन्हें कूछ दिनों के लिए रोक लिया।

बालकांड में वर्णन आता है---

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा,
तिन्हहि राम पद अति अनुरागा।
तापस सम दम दया निधाना,
परमारथ पथ परम सुजाना।
माघ मकर गति रवि जब होई
तीरथपतिहिं आव सब कोई।
देव दनुज किन्नर नर श्रेणी।
सादर मज्जहिं सकल त्रिवेनी।
पूजहिं माधव पद जलजाता।
परसि अखय बटु हरषहिं गाता।
भरद्वाज आश्रम अति पावन।
परम रम्य मुनिबर मन भावन।

××××××××××××××××××××

तहाँ होई मुनि रिषय समाजा,
जाहिं जे मज्जन तीरथराजा।
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा।

कहहिं परसपर हरि गुन गाहा।
ब्रह्म निरुपन धरम बिधि बरनहिं तत्त्व बिभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ग्यान बिराग।

एहि प्रकार भरि मकर नहाहीं
पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं
प्रति संबत अति होई आनंदा।
मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृंदा।
एक बार भरि मकर नहाए।
सब मुनीस आश्रमहिं सिधाए।
जागबलिक मुनि परम बिबेकी।
भरद्वाज राखे पद टेकी।
करि पूजा मुनि सुजसु बखानी।
बोले अति पुनीत मृदु बानी।

संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव।
होहिं न बिमल बिबेक उर गुर सन किए दुराव।

जागबलिक बोले मुस्काई
तुम्हहिं बिदित रघुपति प्रभुताई।
राम भगत तुम मन क्रम बानी।
चतुराई तुम्हारि मैं जानी।
चहहु सुनै राम गुन गूढ़ा।
कीन्हहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा।

और इस तरह से रामचरितमानस में राम कथा विस्तार पाती है। याज्ञवल्क्य ऋषि के अन्य शैक्षिक, दार्शनिक, उपनिषदीय ज्ञान को जाने बिना उनकी सार्वभौमिक आचार्यत्व को समझा नहीं जा सकता।

याज्ञवल्क्य के शिक्षा-दर्शन पर तात्विक अनुबोध :-------

भारत अपनी श्रेष्ठ जीवन- शैली, तात्विक अन्वेषण, मानवीय शैक्षिक सिद्धांतों, सत्यात्मक कलात्मकता, वैश्विक शिवपरता, और शाश्वत सुंदरता के संकल्पों पर आधारित ऋषिपोषित सात्विक जीवन और शिक्षा- प्रणाली के कारण महिमामंडित जगतगुरु बना। हमने शिक्षा को आत्म- विकास का सिद्धांत माना। मनुष्य अन्य जीवों में सर्वश्रेष्ठ है, इस बात को प्रमाणित करने हेतु उसने, पशुवत् जीवन शैली से भिन्न

परोपकारी उत्कृष्ट जीवन का वरण किया, उसकी व्यवस्था में भोग नहीं बल्कि वैराग्य की अनुगूंज थी। वह केवल आहार, निद्रा, भय और मैथुन में सिमट कर नहीं रह जाना चाहता था, इसलिए वह इनको प्रतिबंधित और अनुशासित कर एक सुदृढ़ मनोबली जीवन का अनुयायी बना।इसी को उसने अपने शैक्षिक दर्शन का अंग बनाया, जिससे ऋषियों द्वारा अर्जित ज्ञान को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित किया जा सके। इस कार्य को ऋषिगण ही आगे लेकर चले। महर्षि व्यास ने समाज की सुदृढ़ता का पक्ष रखते हुए लिखा है कि---

न जातु कामान्न भयान्न लोभात्
धर्म त्यजेज्जीवितस्यापि हेतो।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये।
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।

अर्थात-- काम, भय, या लोभ किं बहुना जीवित के भी कारण से धर्म का त्याग मत करो, क्यों कि धर्म शाश्वत है। सुख- दुःख अनित्य हैं। जीव या आत्मा नित्य है, जन्म- मृत्यु अनित्य हैं।

शिक्षा को हमने आत्मा शोधन के लिए प्रयोग किया, जब कि आज की शिक्षा अर्थोपार्जन, रोजगार और उदरपोषण तक सीमित रह गई है, इसलिए बहुत अधिक पढ़ाई करने वालों में भी विषाद, अवसाद, खिन्नता है। प्रसन्नता का अनुभव नहीं कर पाते। काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर पर नियंत्रण नहीं रहता। आचार्य ऋषि पतंजलि ने शिक्षा और योग को पारिभाषित करते हुए लिखा है---

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीना पतंजलि प्रांजलिरानतोऽस्मि।

अर्थात चित्त शुद्धि के लिए योग (योगसूत्र), वाणी शुद्धि के लिए व्याकरण (महाभाष्य) तथा शरीर- शुद्धि के लिए वैद्यकशास्त्र देने वाले पतंजलि ऋषि श्रेष्ठ को प्रणाम।

महर्षि याज्ञवल्क्य की गणना महान श्रृषियों में की जाती है, क्यों कि उनके द्वारा प्रतिपादित ज्ञान की बृहद विचारोक्ति बृहदारण्यकोपनिषद में संपादित है। उन्होंने जीवन- दर्शन को अनेक भागों में विभाजित किया है और प्रत्येक पर विस्तार से चर्चा की है। आध्यात्म और दार्शनिक क्षेत्र में उनका नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। विद्वानों ने उन्हें सर्वोपरि वैदिक ज्ञाता के रूप में प्रतिष्ठित किया है। उनको विशिष्ट सिद्धियाँ प्राप्त थीं। उन्होंने अपनी आध्यात्मिक सिद्धांतों का प्रयोग सामाजिक व्यवस्थाओं और

नैतिक मूल्यबोधों के संवर्द्धन में किया। इन ब्रह्मनिष्ठ योगी विरचित याज्ञवल्क्य शिक्षा, शतपथ ब्राह्मण (वृहदारण्यकोपनिषद) याज्ञवल्क्य स्मृति, शुक्ल यजुर्वेद (वाजसयेनी संहिता),याज्ञवल्क्य विद्या एवं योग याज्ञवल्क्य आदि ग्रंथों में विश्व के समस्त मनुष्यों के हितार्थ आध्यात्मिक, दार्शनिक व तत्त्वज्ञान के विचारधारणाओं का सृजन किया।

1) **आत्म काम-** जिसे आंग्ल भाषा में सेल्फ लव कहते हैं। हमारा आत्म काम होना ही हमारे भीतर की प्रेम संवहन का पारिचायक है। अपनी प्रिय कामना से हम दूसरों से प्रेम करते हैं। यह प्रेम दाम्पत्य के दोनों पक्षों में इसीलिए झलकता है। यही आत्म काम पारिवारिक अन्य संबंधों पर भी लागू होता है। यही प्रेम जब ब्रह्म या ईश्वर के लिए प्रकट होता है तब आत्मा ही देखने योग्य, श्रवणीय, मननीय करने योग्य और ध्यान करने योग्य हो जाती है। विज्ञान से समूचा ब्रह्मांड का ज्ञान स्वतः ही हो जाता है। आत्मज्ञान ही ब्रह्मज्ञान है। आत्मानुभूति से ही ब्रह्मानुभूति होती है। आत्मा के बिना कुछ भी नहीं। आत्म काम ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा हमें आत्म की प्रतीति होती है। प्रेम ही आनंद है। आत्मा से विलग कुछ भी नहीं।

बृहदारण्यकोपनिषद् के 2/4/5 में श्लोक आता है-----

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।
मैत्रय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्व विदितम्।

2) **एषणा -** यही वो मनोदशा है जो हमारे भीतर चाहत (इच्छा) उत्पन्न करती है। सृष्टि की उत्पत्ति ही एषणा से हुई है और इसका संचालन भी उसी से हो रहा है।अनेकों प्रकार की इच्छाओं में तीन अतिप्रबल इच्छाए हैं।

(क) पुत्रैषणा
(ख) वित्तैषणा
(ग) लोकैषणा

महर्षि याज्ञवल्क्य ने गहनतम साधना के द्वारा इन तथ्यों का अवलोकन किया और बृहदारण्यक में इसकी व्याख्या की है। कौषीतकेय नामक शिष्य को उपदेश देते हुए श्रृषि श्रेष्ठ कहते हैं कि-- यही तीन एषणाएं सृष्टि में अतिप्रबल हैं। इन तीनों की उत्पत्ति का मूल कारण आत्मैषणा है। यही आत्मकाम्यता है। आत्मतत्व को जान लेने वाला व्यक्ति स्थितप्रज्ञ बन जाता है। ज्ञान, आनंद और अमरत्व ही ईश्वर की प्राप्ति है।

श्तस्मादेवं विच्छोन्तो दान्त उपरतस्तितिक्षु समाहतो।
भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्यति सर्वमात्मानं पश्यति नैनं पाप्मा
तरति सर्व पाप्मानं तरति नैनं

पाप्मा तपति सर्व पाप्मानं
तपति सर्व पाप्मानं तपति विरजो
ऽविचिकित्सो ब्राह्मणों भवत्येष
ब्रह्मलोकः। बृहदारण्यको 4/4/23

3) पुण्य- पाप - ऋषि कहते हैं कि---

काममय एवायं पुरुष इति
स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति
यत्क्रतुर्भवति तत् कर्म कुरुते
यत् कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते
योऽकामो निष्काम आप्तकाम
आप्तकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति
ब्रह्मस्वरूप सन् ब्रह्माप्याप्नोति।

बृहदारण्यकोपनिषद--4/4/5/6

अर्थात हमारे समस्त पुण्य और पापों हमारे द्वारा ही उत्पन्न और नष्ट किए जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है---

कोऊ नहीं सुख दुख कर दाता।
निज कृत कर्म पाव जग भ्राता।
(जो जस करई सो तस फल चाखा)

सकाम व्यक्ति संतान, संपत्ति, भूमि, जनपद, पूर्वजों, और देवताओं की कामना करता है। उसी प्रकार अकाम व्यक्ति इन सबको त्याग कर आत्मकल्याण की कामना करता है, जो कर्म हमें संदेह ,अंधकार, भ्रम, द्वैत और अज्ञान की ओर ले चलते हैं। जिसका परिणाम क्षुधा, पिपासा, शोक, दुरूख, नाश और मृत्यु होता है, वे पाप कर्म हैं ।मनुष्य काममय है। यह उसकी संकल्पना पर निर्भर है कि वह कैसा कर्म करना चाहता है। कर्म के विषय में गीता भी विशद विवेचना सिखाती है।

4) विद्या- (सा विद्या या विमुक्तये) विद्या वही है जो मुक्ति की ओर ले जाए। वैदिक परंपरानुसार विद्या हमें आनंद की खोज करना सिखाती थी। ब्रह्म ही आनंदमय है, अतः विद्या से उसी की प्राप्ति करनी चाहिए। उसकी निकटता से हमारे वे सभी अवगुण दूर होंगे, जो हमारी अज्ञानता के कारण हैं। जहाँ प्रकाश हो, अंधेरा रही नहीं सकता। विद्या से ही अविद्या का नाश संभव है। ज्ञान की गहराईयों में

हम सोऽहम् की अनुभूति होती है। तथा अध्यात्मज्ञान में (जिस ज्ञान के द्वारा आत्मवस्तु और अनात्मवस्तु जानी जाए उस ज्ञान का नाम " आध्यात्म ज्ञान है।) नित्य स्थित है और तत्वज्ञान के अर्थ रूप परमात्मा को सर्वत्र देखना, यह सब तो ज्ञान है और जो इससे विपरीत है ,वह अज्ञान है।

गीता---13/11

तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः।
नानुध्यायाद् बहून् शब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत्।

बृहदारण्यकोपनिषद 4/4/29

अर्थात- बुद्धिमान ब्राह्मण को विद्या द्वारा उसे ही जानकार उसी में प्रज्ञा करनी चाहिए। बहुत शब्दों का अनुध्याय निरंतर चिंतन नहीं करना चाहिए। वह तो वाणी का व्यर्थ दुरूपयोग है।

5) आत्मा-- याज्ञवल्क्य आत्मवादी चिंतन के पोषक हैं। उनसे पहले के चिंतकों ने प्राण को ही जीवात्मा मान लिया था। लेकिन याज्ञवल्क्य ने आत्मा को प्राण का भी प्राण, चक्षु का भी चक्षु, श्रोत्र का भी श्रोत्र और मन का भी मन मानते हैं। आत्मा की तीन अवस्था उन्होंने प्रमाणित की है--- जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति। इस लोक और परलोक के संपूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव और अहंकार का भी अभाव एवं जन्म- मृत्यु- जरा तथा रोग आदि में दुख- दोषों का बारंबार विचार करना।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः

श्रीमद्भागवतगीता-- तेरहवां अध्याय, सातवां श्लोक

उनका मानना था कि प्राणों में बुद्धवृत्तियों के भीतर रहने वाला विज्ञानमय ज्योति स्वरूप पुरुष है, जो समान होकर इस लोक से परलोक तक संचार करता है, वह आत्मा है।

प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चचक्षरुत
श्रोतस्य श्रोत्रं मनसा ये मनो विदुः।

योऽयं विज्ञानमयः प्राणेशु हृद्यान्तज्योतिः।
पुरुषः स समानः सन्नुभौलोकावनुसूचिंरति।

बृहदारण्यकोपनिषद 4/3/7

6) **ब्रह्म--** याज्ञवल्क्य के मतानुसार ब्रह्म देवाधिदेव हैं। वह एक है और अन्तर्यामी है, क्यों कि वह सब वस्तुओं में है और सभी वस्तुएं उसमें हैं। उस परम ब्रह्म को नेति नेति के सिद्धांत द्वारा जाना जा सकता है। उसके जान लेने पर और कुछ ज्ञातव्य नहीं रह जाता। ब्रह्मज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है और यथार्थ अमरत्व भी। पाश्चात्य दार्शनिकों ने उसे विचार शुद्ध चेष्टा बतलाया है, जब कि याज्ञवल्क्य ने प्रथमोत्तम कहते हुए " सोऽहम् " अर्थात मैं वही हूं की अनुभूति द्वारा अनुभव किया।

" तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व " ऐसा तैतरीय उपनिषद में 3/2 में कहा गया है।

अर्थात--- तप से ब्रह्म जानने की इच्छा कर। श्रुति के अनुसार तप आदि विद्योत्पत्ति के साधन और गुरू की उपासना आदि कर्म अविद्यामय होने के कारण ' अविद्या ' कहे जाते हैं। उस अविद्या रूप कर्म से विद्या को उत्पन्न करके वह मृत्यु यानी कामना को उत्पन्न पार कर जाता है।तब वह निष्काम और एषणामुक्त पुरुष ब्रह्मविद्या से अमरत्व प्राप्त कर लेता है।

7) **मन-** मन या चित्त आत्मा का दिव्य चिंतन स्थान है। मन के द्वारा ही आत्मा कर्ता बनता है। मन ही सोचता ,संकल्प करता, और अनुभव करता है। विद्या या ज्ञान हृदय का गुण है। मन का नहीं। ज्ञान हृदय में रहता है और संकल्प मन में। महर्षि ने इंद्रियों के विषय की गिनती इस प्रकार बताई है। स्पर्श और उनका आयतन त्वक। गंध और उनका आयतन नासिका, रस और उसका आयतन जिह्वा, रूप और उसका आयतन चक्षु, शब्द और उसका आयतन श्रोत्र। संकल्प और उसका आयतन मन, विद्याएं और उसका आयतन हृदय, कर्म और उनका आयतन हाथ, आनंद और उसका आयतन उपस्था।विसर्ग और उसका अयन पायु मार्ग और उनके अयन चरण तथा वेद और उनका अयन वाक्।

ऐतरेयोपनिषद् के द्वितीय अध्याय में आत्मज्ञान को परमपद- प्राप्ति का एकमात्र साधन बतला कर कहा गया है कि-- हृदय, मन, संज्ञान, आज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान, मेधा, दृष्टि, धृति, मति, मनीषा, जूति, स्मृति, संकल्प, क्रतु, असु, काम एवं वश- ये सब प्रज्ञा के ही नाम हैं।

महर्षि के अनुसार मन या चेतना शक्ति में तथा जड़तत्व में कोई मौलिक अंतर नहीं है। दोनों एक ही आत्मतत्व के आविर्भाव हैं। इसी से प्रेरित होकर शंकराचार्य ने विवर्तवाद की स्थापना की। उन्होंने बृहदारण्यकोपनिषद् में प्रकृति के जड़तत्व में महाभूत का सम्मिलित होना बताया है। यद्यपि उनकी संख्या अनिश्चित है।

स वा अयमात्मा ब्रह्म पृथ्वीमय आटोमोबाइल वायुमय आकाशमयस्तेजोमय।

अर्थात-- (हमारी आत्मा ब्रह्म पृथ्वीमय है, जलमय है, वायुमय है, आकाशमय है, और तेजोमय है।)

याज्ञवल्क्य की शिक्षाएं--- महर्षि के स्मृति और शिक्षा- ग्रंथों में विशेष शिक्षाप्रद विचार संस्कृत भाषा में व्यक्त किए गए हैं। यहाँ पर उनके कुछ उदाहरण अर्थ सहित प्रस्तुत हैं--

अहिरेव गणाध्दीतः सम्मानान्नरकादिव।
राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यामधिगच्छति।

अर्थात-- (जो व्यक्तिजन समुदाय से एवं उनके कोलाहलादि से उसी तरह दूर रहें जैसे सर्पों के समूह से लोग दूर रहते हैं, एवं सम्मान प्रतिष्ठा को भी नरक तुल्य समझे और नारियों से उसी तरह दूर रहें जैसे राक्षसियों से लोग दूर रहते हैं। इस प्रकार तीन गुणों से जो युक्त रहेगा, वही विद्या को प्राप्त कर सकता है।

अन्य जगह ऋषि कहते हैं कि --

सुखार्थी चेत् त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेत् त्यजेत सुखम्।
सुखिनस्तु कुतो विद्या विद्यार्थिनि कुतरू सुखम्।

अर्थात-- (विद्याध्ययन सुख परित्यागपूर्ण ही संभव है। सुख चाहने वाला कभी विद्याध्ययन नहीं कर सकता और विद्यार्थी सुखपूर्वक नहीं रह सकता। सुख से रहने वाले को विद्या एवं विद्यार्थी को सुख कैसे प्राप्त हो सकता है। अतः विद्यार्थी को सुख त्यागपूर्वक कष्ट से विद्याध्ययन करना चाहिए।

आगे एक श्लोक के माध्यम से ऋषि यह कहते हैं कि-- विद्या प्राप्ति में उद्यम ही बड़ा कारण होता है, इसमें शक्तिबल की अपेक्षा नहीं होती है। जैसे चींटियों के द्वारा धूल का संचय करके ढूह जैसा बना दिया जाता है, यहाँ बल सामर्थ्य की आवश्यकता नहीं पड़ती, यहाँ उद्यम या प्रयास ही कारण हो सकता है।अल्पप्राण नन्हीं सी चींटी में क्या बल सामर्थ्य होगा-? किन्तु उसका उद्यम और साधना ही उसकी सफलता का द्योतक है।

यथा विपीलिकाभिश्च क्रियते पांसुसचिंयम्।
नचात्र बलसामथर्यमुद्दमस्तत्र कारणम्।

अर्जिनस्य क्षयं ष्ट्वा वल्मीकस्य तु सचिंयम्।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद दानाध्ययन कर्मसु।

अर्थात-- दान व अध्ययन आदि कार्यों में दिन सफल करना चाहिए। आंखों में

अंजन का कुछ- कुछ ही कण संचित करने पर बल्मीक बन जाता है। उसी प्रकार दान एवं अध्ययन आदि कर्मों में दिन को सफल बनाना चाहिए। एक भी दिन व्यर्थ न जाए। इस प्रकार समय का मूल्य अध्ययन में अधिक है।

कुछ अन्य दार्शनिक तत्वों पर ऋषि याज्ञवल्क्य के विचार----

यह शरीर आत्मा का क्रीड़ा क्षेत्र है। मनुष्य की आत्मा ही उसका प्रकाश है, क्यों कि आत्मा को ही प्रकाश मान कर यह मनुष्य बैठता, चलता, और अपना कार्य करता है और लौटता है।

सच्चा स्व आत्मा व्यक्तिगत अहंकार से अलग है, इसलिए कर्म और पुनर्जन्म के आधीन नहीं है। आत्मा शाश्वत अपरिवर्तनीय है और ब्रह्मांड में अन्तर्निहित अद्वैत सिद्धांत के साथ पहचानी जाती है।

आत्मा ज्ञाता है, शरीर की मृत्यु के उपरांत भी वह ज्ञाता रहता है। विद्या, कर्म, और पूर्व प्रज्ञा मृतक मनुष्य की आत्मा के साथ मृत्यु के उपरांत भी रहते हैं।

आत्मा सर्वान्तर है और इसके अतिरिक्त जो कुछ है, वह नाशवान है। आत्मा सत्यम् है, वह परम सत्य है, अद्वितीय है। वह अणु से भी अणु है और महान से भी महत्तर है।

वित्त से अमरत्व नहीं प्राप्त किया जा सकता।

जैसा जो सोचता है, वैसा ही व्यवहार करता है और वैसा ही हो जाता है ।अच्छा करने वाला अच्छा और बुरा करने वाला बुरा हो जाता है।

एक व्यक्ति में अनेक इच्छाएं होती हैं, जैसी उसकी इच्छा होगी, वैसा ही उसका काम होगा। वह जो काम करेगा वैसा परिणाम भी भोगेगा।

प्रेम व्यक्ति की आत्मा द्वारा संचालित होता है। वास्तव में आत्मा को देखना, सुनना, समझना, और ध्यान करना चाहिए। जिसने आत्मा को प्रतिबिंबित होकर समझा है, उसके द्वारा ही पूरी दुनिया समझी जा सकती है।

सपने स्वंय के सक्रिय प्रक्षेपण हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि सपने देखना अपने-आप में वास्तविकता की रचनात्मक प्रकृति को साझा करना है।

जो व्यक्ति आत्मतत्व को जान लेता है , पाप उसे जीत नहीं सकता। उल्टे वह पाप पर विजयी होता है। पाप उसे जला नहीं सकता, बल्कि वह पाप को जलाता है। वह निष्पाप, राग- द्वेष और संदेहरहित ब्राह्मण बन जाता है। यही ब्रह्मलोक की प्राप्ति है।

पश्चिमी विद्वान और दार्शनिक याज्ञवल्क्य को बृहदारण्यकोपनिषद ग्रंथ के आधार पर इसे मोक्ष या मुक्ति का मार्ग और स्वतंत्रता की अनुभूति कराने वाला महान ग्रंथ मानते हैं।

भारत के इस ऋषि को महान दार्शनिक और विचारक के माध्यम से विश्व- स्तर पर हमारी शैक्षिक संप्रभुता स्थापित हो सकी है। इनकी सूक्ति अध्ययन और चिंतन के पोषक बन सके। विदेशी विचारकों में इनका आत्म विश्लेषण कौतूहल पैदा करने वाला था। विशेष संदर्भ के विचारों ने उनका ध्यान अपनी ओर खींचा है। आध्यात्मिक संदर्भ, आत्मशक्ति, स्वप्न और कर्म के विचार विश्वाच्छादित हैं।

याज्ञवल्क्य ऋषि ने अपने आश्रम में सूर्य- स्तुति पर बहुत जोर दिया। उनका मानना था कि सूर्य ही समस्त ज्ञान-विज्ञान के प्रदाता हैं, इसलिए उनकी त्रिवंदना आवश्यक है। उनके द्वारा सृजित स्त्रोत को लोग आज भी पूरी निष्ठा के साथ प्रार्थना करते हैं।

नमः सवित्रे द्वाराय मुक्तेरमिततेजसे
ऋग्यजुः सामभूताय त्रयीधाम्ने च ते नमः।
नमोऽग्रीषोमभूताय जगतः कारणात्मने।
भास्कराय परं तेजस्सौषुम्रं रुचि बिभ्रते।
कलाकाष्ठानिमेषादिकालज्ञानात्मरूपिणे।
ध्येयाय विष्णुरूपाय परमाक्षररूपिणे।
बिभर्ति यः सुरगणानाप्यायेन्दु स्वरश्मभिः
स्वधामृतेन च पितृंस्तस्मै तृप्त्यात्मने नमः।
हिमाम्बुघर्मवृष्टीनां कर्ता भर्ता च यः प्रभुः।
तस्मै त्रिकालरूपाय नमः सूर्याय वेधसे।
अपहन्ति तमो यश्च जगतोऽस्य जगतपतिः।
सत्त्वधामधरो देवो नमस्तस्मै विवस्यते।
सत्कर्मयोग्यो न जनो नैवापः शुद्धिकारणम्।
यस्मिन्ननुदिते तस्मै नमो देवाय भास्वते।
स्पृष्टो यदंशुभिर्लोकः क्रियायोग्यो हि जायते।
पवित्रताकारणाय तस्मै शुद्धात्मने नमः।
नमः सवित्रे सूर्याय भास्कराय विवस्वते।
आदित्यादिभूताय देवादीनां नमो नमः।

हिरण्मयं रथं यस्य केतवोऽमृतवाजिनः।
वहन्ति भुवनालोकिचक्षुषं तं नमाम्यहम्।

संदर्भ ग्रंथ------

1) आचार्य याज्ञवल्क्य शिक्षा, व्याख्याकार डॉ नरेश झा, वाराणसी, सुरभारती प्रकाशन
2) याज्ञवल्क्य शिक्षा, व्याख्याकार संस्कृत डॉ दिव्यचेतन ब्रह्मचारी, चौखम्भा, वाराणसी।
3) आचार्य धनर्जित शास्त्री जातवेदा, संस्कृत साहित्य के विद्वान, नई दिल्ली।
4) श्रीमद्भागवत गीता
5) याज्ञवल्क्य स्मृति
6) ऐतरेयोपनिषद
7) तैतरीय उपनिषद

डॉ शुभदा पांडेय
(वरिष्ठ साहित्यकार व शिक्षाविद्)

□□□

गोस्वामी तुलसीदास जी का प्रयागराज से संबंध



गोस्वामी तुलसीदास जी का प्रयागराज से अत्यंत गहरा आध्यात्मिक और आत्मीय संबंध है। अपने रामचरितमानस में उन्होंने बार-बार प्रयागराज की महिमा का गुणगान किया है। त्रिवेणी का महिमामंडन किया है। उन्होंने यहाँ के दारागंज स्थित श्री स्वामी देवमुरारी जी (रामानंद संप्रदाय) से दीक्षा लेकर अचला - लंगोटी लेकर विधिवत् विरक्त वेश धारण किया। गोस्वामी तुलसीदास जी का अधिकांश समय वाराणसी, अयोध्या, चित्रकूट और प्रयागराज में बीता। यहाँ से उनको वैश्विक आध्यात्मिक चिंतन को विस्तीर्ण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

दारागंज स्थित संस्कृति केंद्र "श्री तुलसीदास जी का बड़ा स्थान" के नाम से विख्यात है, जो वैष्णव पंथ- परम्परा का केंद्र रहा है। तुलसीदास जी की रचनाओं में प्रयागराज के प्रति अटूट अनुराग परिलक्षित होता है।

□□□

महाकुंभ में पड़िला महादेव

महाकुंभ में पधारे श्रद्धालु आसपास के तीर्थस्थलों को देखना नहीं भूलते हैं। उसी में एक है पडिला महादेव, प्रयागराज का पड़िला महादेव मंदिर (पंडेश्वर महादेव) एक प्राचीन महाभारत कालीन तीर्थस्थल है, जो सोरांव तहसील में फाफामऊ के पास स्थित है। मान्यता है कि द्वापर युग में अज्ञातवास के दौरान पांडवों ने यहाँ शिवलिंग स्थापित कर शिव साधना की थी। यह मंदिर प्रयागराज की पंचकोशी परिक्रमा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है।

पड़िला महादेव मंदिर का इतिहास और पौराणिक मान्यताएँ: ------

पांडवों द्वारा स्थापना : किंवदंती है कि जब पांडव अज्ञातवास में थे, तब अपनी विजय और सफलता के लिए ,उन्होंने यहाँ शिव जी की पूजा की। इस स्थान का पौराणिक नाम पांडेश्वर महादेव पड़ा, जो समय के साथ आंचलिक प्रभाव से पड़िला महादेव के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

भीम से संबंध : पौराणिक कथाओं के अनुसार, पाण्डव वनवास के दौरान यहाँ रुके थे और भीम ने भगवान शिव की पूजा की थी। लोकमान्यताओं में भी इसकी चर्चा है।

पुनरुद्धार : इस प्राचीन मंदिर का पुनरुद्धार 1798 में परीक्षितगढ़ के राजा नैन सिंह द्वारा करवाया गया था। वे बहुत धार्मिक और निष्ठावान व्यक्ति थे। भगवान शिव की आराधना करते हुए लीन हो जाते थे।

स्थापत्य कला : यह मंदिर लाल भूरे पत्थर से बना है और अपनी अनूठी स्थापत्य शैली के लिए जाना जाता है।

धार्मिक महत्व (पंचकोशी) : यह प्रयागराज की पवित्र पंचकोशी परिक्रमा का अभिन्न अंग है, जिसमें भक्त पांच प्रमुख स्थानों (हरण हनुमान, सुजावन देव, पड़िला महादेव, सीताकुंड, निषाद राज स्थली) की यात्रा करते हैं।

विशेष अवसर: महाशिवरात्रि और सावन के महीने में यहाँ दूर-दराज से भक्त मन्नतें पूरी करने और जलाभिषेक करने, ध्वजा चढ़ाने आते हैं। हरितालिका तीज पर स्त्रियाँ अपने पति के लिए आशीष लेने आती हैं। यह मंदिर अपनी धार्मिक आस्था और ऐतिहासिक महत्व के कारण श्रद्धालुओं के लिए बहुत प्रिय है। कनैल, धतूरा और मदार के फूलों से शिव का श्रृंगार देखते ही बनता है।

□□□

प्रयागराज की महिमा

प्रयागराज भारत के सबसे पवित्र और प्राचीन शहरों में से एक है,इसका नाम यहाँ ऋषि- मुनियों द्वारा निरंतर होने वाले प्रज्ञा यज्ञ के कारण प्रयागराज पड़ा। आज भी यहाँ की धरती अपनी बौद्धिक औदार्य के लिए प्रसिद्ध है, जिसे तीर्थराज (तीर्थों का राजा) कहा जाता है। यह गंगा, यमुना और पौराणिक सरस्वती के संगम तट (त्रिवेणी संगम) पर स्थित है, जो आध्यात्मिक शक्ति, महाकुंभ की स्थली और भारतीय इतिहास, संस्कृति और स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण केंद्र है।ज्ञान की गंगा, भक्ति की यमुना और कर्म की सरस्वती ही इसे महनीय बनाती है। यह विश्व भर के लोगों के आकर्षण का केंद्र है।

प्रयागराज की महिमा अपरंपार है, यह लोक- परलोक के समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाली भूमि है। यहाँ भरद्वाज ऋषि का आश्रम है, जो प्राचीन शिक्षा केंद्रों में एक था। यहाँ याज्ञवल्क्य ऋषि ने आकर आध्यात्मिक संवाद किया था। प्रयागराज की मुख्य महिमा और विशेषताएं : ---

त्रिवेणी संगम: गंगा, यमुना और अदृश्य सरस्वती का मिलन स्थल, जहाँ स्नान करने से मोक्ष की प्राप्ति मानी जाती है। मोक्ष का तात्पर्य केवल शरीर से मुक्ति या कर्मों से मुक्ति नहीं, बल्कि निष्काम कर्म से अपने क्रियाफलों को शून्य करते जाना है। सृष्टि की सेवा को ईश्वर का वरदान समझ कर पालन करना यही सघन साधना है।

महाकुंभ और कुंभ मेला: यहाँ हर 12 साल में दुनिया का सबसे बड़ा शांतिपूर्ण धार्मिक जमावड़ा 'कुंभ मेला' लगता है। माघ मास में प्रति वर्ष नहान लगता है। यहाँ दान का विशेष महत्व है। लोग पूरे माघ मास में यहाँ कल्पवास करते हैं।

पौराणिक महत्व: ऋग्वेद और पद्म पुराण जैसे प्राचीन ग्रंथों में वर्णित, यह ब्रह्मा द्वारा की गई पहली बलि (यज्ञ) का स्थान माना जाता है, इसलिए 'प्रयाग' नाम पड़ा। यह यज्ञ मानव कल्याण और विश्व शांति की पावन भावना से प्रेरित होकर किया गया था।

ऐतिहासिक विरासत: यहाँ प्रसिद्ध अकबर का किला, जिसे अशोक का किला भी माना जाता है। इसके प्राचीर में प्राचीन अक्षय वट है, जो अब सबके लिए खोल दिया गया है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय स्थित है।

सांस्कृतिक और शिक्षा का केंद्र: भरद्वाज ऋषि की भूमि के रूप में जाना जाने वाला यह शहर, प्राचीन काल से ही विद्या का एक बड़ा केंद्र रहा है।

प्रमुख दार्शनिक स्थलों (जैसे लेटे हुए हनुमान जी) सबके आस्था के केंद्र हैं, दूर-दूर से भक्त यहाँ उनको निशान (ध्वजा) चढ़ाने आते हैं।

□□□

प्रयागराज के जागृत देवता- लेटे हनुमान जी

प्रयागराज में संगम तट (किला) के पास स्थित लेटे हुए हनुमान जी का मंदिर (बड़े हनुमान जी) विश्व में हनुमान जी की एकमात्र लेटी हुई प्रतिमा (लगभग 20 फीट) है, जो अपनी अनोखी आस्था के लिए जानी जाती है। मान्यता है कि लंका विजय के बाद थकान मिटाने के लिए हनुमान जी ने यहाँ विश्राम किया था, और यह मंदिर 600-700 वर्ष से अधिक पुराना है।

इतिहास और रोचक कथाएं: -

लंका विजय के बाद विश्राम:- पौराणिक मान्यताओं के अनुसार, रावण वध के बाद जब हनुमान जी लंका से लौट रहे थे, तो उन्हें अत्यधिक थकान महसूस हुई। माता सीता के कहने पर, उन्होंने प्रयाग में संगम तट पर विश्राम किया और लेट गए।

अनोखी प्रतिमा स्थापना (एक अन्य कथा): - कहा जाता है कि कन्नौज के एक राजा को कोई संतान नहीं थी। उनके गुरु ने विंध्याचल पर्वत से हनुमान जी की यह विशाल प्रतिमा लाकर स्थापित करने का उपाय बताया। जब मूर्ति नाव से प्रयाग लाई जा रही थी, तो नाव बीच में ही डूब गई। वर्षों बाद, जब गंगा का जलस्तर कम हुआ, तो बालकेसर गिरी नाम के महाराज को यह प्रतिमा मिली, जिन्हें स्वप्न में आदेश मिला था।

स्थापना और पुनर्प्राप्ति:- लगभग 1500 ईस्वी में बालकेसर गिरी महाराज ने इस प्रतिमा को बालू से निकालकर यहाँ फिर से स्थापित किया था। तब से नियमित पूजा-अर्चना चल रही है।

अकबर और मंदिर:- एक किंवदंती है कि जब अकबर ने यहाँ किला बनवाया, तो उसने मूर्ति को हटाने की कोशिश की, लेकिन लाख कोशिशों के बाद भी मूर्ति टस से मस नहीं हुई, और अनेक बाधाएँ जीवन में आने लगीं, तब ये प्रयास बंद कर दिया गया।

महिमा: - मान्यता है कि यहाँ बाएं पैर के नीचे कामदा देवी और दाएं पैर के नीचे अहिरावण दबे हैं। यह भी माना जाता है कि बिना यहाँ दर्शन किए संगम स्नान अधूरा रहता है।

हर साल बाढ़ के दौरान, गंगा का पानी खुद आकर हनुमान जी के चरण पखारता है, जो इस मंदिर का एक अद्भुत रहस्य माना जाता है। पाँव पखारने के बाद पानी स्वतः वापस चला जाता है।



यहाँ साल भर मेले जैसा वातावरण रहता है।प्रत्येक मंगलवार को खड़े होने की जगह नहीं मिलती, चारो ओर बैठकर लोग सुंदरकांड और हनुमान चालीसा का पाठ होता रहता है। गाँव-गाँव के लोग निशान (ध्वजा लेकर गाजे- बाजे के साथ ट्रालियों में बैठे जयकारा लगाते हुए आते-जाते दिखते हैं। शनिवार को भी ऐसा ही विहंगम दृश्य दिखाई देता है। जेठ के हर मंगलवार को बड़ा मंगलवार मान कर बहुत पूजा-पाठ, हवन, दान, भंडारा आदि पूरे शहर में होता है।

कार्तिक मास के चतुर्दशी को श्री हनुमान जी का जन्मोत्सव बहुत धूमधाम से मनाया जाता है। अब कहीं- कहीं चैत पूर्णिमा को भी मनाया जाने लगा है।

□□□

प्रयागराज और भारद्वाज ऋषि

महर्षियों में भारद्वाज ऋषि का नाम प्राचीन भारत के सप्तऋषियों में से एक, वे महान दार्शनिक, शिक्षाविद् और वैज्ञानिक थे, उन्होंने मनोवैज्ञानिक तरीके से मानवीय व्यवहार का अध्ययन किया। उनके द्वारा स्थापित गुरुकुल प्रयाग में है।जो विशाल और शोध संस्थान जैसा था। इसकी अनेक उपशाखाएँ देश के कोने- कोने में फैली हुई थीं। जिस विशाल गुरुकुल में अनेक आचार्य, उपाचार्य और सह आचार्य हुआ करते थे। छात्रों को वहाँ रह कर वहाँ की मर्यादाओं के पालन के साथ शिक्षण प्राप्त करना होता था। उन्होंने देवगुरु बृहस्पति (पिता) और इंद्र से आयुर्वेद, व्याकरण, धनुर्वेद, राजनीति और विमान शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की। वे ऋग्वेद के छठे मण्डल के रचयिता और यंत्र सर्वस्व के लेखक माने जाते हैं।

भारद्वाज ऋषि की शैक्षणिक जानकारी---

महर्षि भारद्वाज प्राचीन भारत के सप्तऋषियों में से एक, महान दार्शनिक, शिक्षाविद् और वैज्ञानिक थे, जिन्होंने प्रयाग में एक विशाल गुरुकुल स्थापित किया। उन्होंने देवगुरु बृहस्पति (पिता) और इंद्र से आयुर्वेद, व्याकरण, धनुर्वेद, राजनीति और विमानशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की।

भारद्वाज ऋषि की शैक्षणिक विरासत और योगदान:----

विमान विज्ञान: महर्षि भारद्वाज को विमान अभियांत्रिकी का जनक माना जाता है। उन्होंने यंत्र सर्वस्व (विमान शास्त्र) नामक ग्रंथ लिखा, जिसमें विभिन्न प्रकार के यंत्रों और हवाई जहाजों के निर्माण और संचालन की विधि वर्णित है।

आयुर्वेद के ज्ञाता बनने के लिए उन्होंने इंद्र से आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया और चरक संहिता के अनुसार, उन्होंने आत्रेय पुनर्वसु को चिकित्सा विज्ञान (कायचिकित्सा) का ज्ञान दिया था।

वेदों के रचयिता:---- भारद्वाज ऋषि ऋग्वेद के छठे मण्डल के ऋषि हैं, जिसमें 765 मंत्र हैं। उन्हें अथर्ववेद का भी ज्ञाता माना जाता है।

उन्होंने व्याकरण की शिक्षा इंद्र से ली और इसके एक प्रमुख प्रवक्ता बने। उन्होंने राजनीति और अर्थशास्त्र पर भी ग्रंथ लिखे।

गुरुकुल (विश्वविद्यालय): उन्होंने प्रयाग (आधुनिक इलाहाबाद) में एक महान गुरुकुल की स्थापना की, जहाँ हजारों शिष्यों को शिक्षा दी जाती थी।

अन्य महत्वपूर्ण शैक्षणिक तथ्य:----

द्रुपद को शिक्षा: द्रौपदी के पिता द्रुपद ने भी इन्हीं से अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी।

उन्हें त्रिकालदर्शी ऋषि भी कहा जाता है। रामायण और महाभारत काल का एक महान चिंतक और ज्ञानी माना जाता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण: ---- उनके ग्रंथों में ब्रह्मांड विज्ञान (अंशुबोधनी) और भविष्य की उड़ान प्रौद्योगिकी (एयरोनॉटिक्स) का उल्लेख मिलता है।

भारद्वाज की शिक्षा-----

भारद्वाज ने इन्द्र से व्याकरण-शास्त्र का अध्ययन किया था और उसे व्याख्या सहित अनेक ऋषियों को पढ़ाया था। 'ऋक्तन्त्र' और 'ऐतरेय ब्राह्मण' दोनों में इसका वर्णन है।

भारद्वाज ने इन्द्र से आयुर्वेद पढ़ा था, ऐसा चरक ऋषि ने लिखा है। अपने इस आयुर्वेद के गहन अध्ययन के आधार पर भारद्वाज ने आयुर्वेद-संहिता की रचना भी की थी।

भारद्वाज ने महर्षि भृगु से धर्मशास्त्र का उपदेश प्राप्त किया और 'भारद्वाज-स्मृति' की रचना की। महाभारत, तथा हेमाद्रि ने इसका उल्लेख किया है। पांचरात्र----भक्ति-सम्प्रदाय में प्रचलित है कि सम्प्रदाय की एक संहिता 'भारद्वाज-संहिता' के रचनाकार भी ऋषि भारद्वाज ही थे।

महाभारत, शान्तिपर्व के अनुसार ऋषि भारद्वाज ने 'धनुर्वेद'- पर प्रवचन किया था। वहाँ यह भी कहा गया है कि ऋषि भारद्वाज ने 'राजशास्त्र' का प्रणयन किया था। कौटिल्य ने अपने पूर्व में हुए अर्थशास्त्र के रचनाकारों में ऋषि भारद्वाज को सम्मान से स्वीकारा है।

ऋषि भारद्वाज ने 'यन्त्र-सर्वस्व' नामक बृहद् ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ का कुछ भाग स्वामी ब्रह्ममुनि ने 'विमान-शास्त्र' के नाम से प्रकाशित कराया है। इस ग्रन्थ में उच्च और निम्न स्तर पर विचरने वाले विमानों के लिये विविध धातुओं के निर्माण का वर्णन है।

इस प्रकार एक साथ व्याकरणशास्त्र, धर्मशास्त्र, शिक्षा-शास्त्र, राजशास्त्र, अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, आयुर्वेद और भौतिक विज्ञानवेत्ता ऋषि भारद्वाज थे- इसे उनके ग्रन्थ और अन्य ग्रन्थों में दिये उनके ग्रन्थों के उद्धरण ही प्रमाणित करते हैं।



उनकी शिक्षा के विषय में एक मनोरंजक घटना तैत्तिरीय ब्राह्मण-ग्रन्थ में मिलती है। घटना का वर्णन इस प्रकार है- भारद्वाज ने सम्पूर्ण वेदों के अध्ययन का यत्न किया। दृढ़ इच्छा-शक्ति और कठोर तपस्या से इन्द्र को प्रसन्न किया। भारद्वाज ने प्रसन्न हुए इन्द्र से अध्ययन हेतु सौ वर्ष की आयु माँगी। भारद्वाज अध्ययन करते रहे। सौ वर्ष पूरे हो गये। अध्ययन की लगन से प्रसन्न होकर दुबारा इन्द्र ने फिर वर माँगने को कहा, तो भारद्वाज ने पुन: सौ वर्ष अध्ययन के लिये और माँगा। इन्द्र ने सौ वर्ष प्रदान किये। इस प्रकार अध्ययन और वरदान का क्रम चलता रहा। भारद्वाज ने तीन सौ वर्षों तक अध्ययन किया। इसके बाद पुन: इन्द्र ने उपस्थित होकर कहा-" हे भारद्वाज! यदि मैं तुम्हें सौ वर्ष और दे दूँ तो तुम उनसे क्या करोगे?"

भारद्वाज ने सरलता से उत्तर दिया, " मैं वेदों का अध्ययन करूँगा।" इन्द्र ने तत्काल बालू के तीन पहाड़ खड़े कर दिये, फिर उनमें से एक मुट्ठी रेत हाथों में लेकर कहा-'भारद्वाज, समझो ये तीन वेद हैं और तुम्हारा तीन सौ वर्षों का अध्ययन यह मुट्ठी भर रेत है। वेद अनन्त हैं। तुमने आयु के तीन सौ वर्षों में जितना जाना है, उससे न जाना हुआ अत्यधिक है।' अत: मेरी बात पर ध्यान दो- 'अग्नि है सब विद्याओं का स्वरूप। अत: अग्नि को ही जानो। उसे जान लेने पर सब विद्याओं का ज्ञान

स्वत: हो जायगा, इसके बाद इन्द्र ने भारद्वाज को सावित्र्य-अग्नि-विद्या का विधिवत् ज्ञान कराया। भारद्वाज ने उस अग्नि को जानकर उससे अमृत-तत्त्व प्राप्त किया और स्वर्गलोक में जाकर आदित्य से सायुज्य प्राप्त किया'।

इन्द्र द्वारा अग्नि-तत्त्व का साक्षात्कार किया, ज्ञान से तादात्म्य किया और तन्मय होकर रचनाएँ कीं।

आयुर्वेद के प्रयोगों में ये परम निपुण थे। इसीलिये उन्होंने ऋषियों में सबसे अधिक आयु प्राप्त की थी। वे ब्राह्मणग्रन्थों में 'दीर्घजीवितम' पद से सबसे अधिक लम्बी आयु वाले ऋषि गिने गये हैं।

चरक ऋषि ने भारद्वाज को 'अपरिमित' आयु वाला कहा।

भारद्वाज ऋषि काशीराज दिवोदास के पुरोहित थे। वे दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन के पुरोहित थे और फिर प्रतर्दन के पुत्र क्षत्र का भी उन्हीं मन्त्रद्रष्टा ऋषि ने यज्ञ सम्पन्न कराया था।

वनवास के समय श्री राम इनके आश्रम में गये थे, जो ऐतिहासिक दृष्टि से त्रेता-द्वापर का सन्धिकाल था। उक्त प्रमाणों से भारद्वाज ऋषि को 'अनूचानतम' और 'दीर्घजीवितम' या 'अपरिमित' आयु कहे जाने में कोई अत्युक्ति नहीं है। भारतीय ऋषि परंपरा में उनका नाम बहुत श्रद्धापूर्वक लिया जाता है।

□□□

प्रयागराज क्यों है तीर्थराज

धन्य भूमि प्रयाग की जहाँ गंग- यमु धार।
गुप्त सरस्वती पूज्य हैं हनुमत जी सरकार।

प्रयागराज को 'तीर्थराज' (तीर्थों का राजा) कहा जाता है, भारत अपनी तीर्थस्थलों के कारण विश्व में अलग पहचान बनाता है, इसकी पौराणिक सांस्कृतिक धरोहर और चिंतन ही इसे सर्वश्रेष्ठ बना कर विश्व के लिए स्तुत्य बनाते हैं। यह वंदनीय गंगा, यमुना और अदृश्य सरस्वती के पवित्र संगम पर स्थित है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार, यहाँ स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ के समान पुण्य, मोक्ष और पापों से मुक्ति मिलती है। और हर तरह के भौतिक-अभौतिक सिद्धियों की प्राप्ति होती है। यह ब्रह्मा की यज्ञभूमि, महाकुंभ स्थल, और प्रमुख आध्यात्मिक केंद्र है, जहाँ संगम में त्रिवेणी के दर्शन विशेष रूप से फलदायी माने जाते हैं।शिक्षा और शिक्षक के लिए यह अनंत काल से चतुर्लाभ भूमि रही है।

प्रयागराज तीर्थ की प्रमुख महिमा और विशेषताएँ:------

तीर्थों का राजा (तीर्थराज): सभी तीर्थों में सर्वश्रेष्ठ माने जाने के कारण इसे तीर्थराज की उपाधि प्राप्त है।जैसा कि हम सभी जानते हैं, गंगा के जल के समान कोई दूसरा जल है ही नहीं। इस जल में कभी संक्रमण नहीं लगता। इसमें वर्षों रखने के बाद भी दुर्गंध नहीं आती। किटाणु नहीं पड़ते। यह जिसमें मिल जाता है, वह जल भी गंगाजल हो जाता है। हर प्रकार के पूजा-पाठ में इस जल की आवश्यकता पड़ती है। हर भारतीय के घर में ससम्मान इसे रखा जाता है। रोगियों को नित्य सेवन से असाध्य बीमारियाँ दूर होती हैं।

त्रिवेणी संगम का महत्व:--- यहाँ गंगा, यमुना और अदृश्य सरस्वती का मिलन स्थल है। मान्यता है कि संगम के पवित्र जल में स्नान करने से व्यक्ति जन्म-मरण के बंधन , श्रृण, रोग, रिपु से मुक्त हो जाता है। महाकुंभ और माघ मेला: यहाँ हर 12 साल में महाकुंभ और हर साल माघ महीने में मेला लगता है, जिसे दुनिया का सबसे बड़ा आध्यात्मिक समागम माना जाता है। ब्रह्मा की यज्ञभूमि: पौराणिक मान्यताओं के अनुसार, ब्रह्मा जी ने सृष्टि की रचना के बाद पहला यज्ञ यहीं किया था। अक्षयवट: यहाँ का अक्षयवट वृक्ष, जो अक्षय (कभी न खत्म होने वाला) है, आध्यात्मिक महत्व रखता है। पापों का नाश: अग्नि पुराण और अन्य धार्मिक

ग्रंथों के अनुसार, प्रयाग में स्नान करने से करोड़ों गौदान के बराबर पुण्य मिलता है और तीन तापों- आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक- का नाश होता है। अस्थि विसर्जन और मोक्ष: मान्यता है कि यहाँ संगम में अस्थि विसर्जन करने से मृतकों को मोक्ष प्राप्त होता है।

प्रयागराज की महिमा का कोई आदि-अन्त नहीं है। तीर्थराज प्रयागराज भारत का प्राण कहा गया है। यहां प्रत्येक बारह वर्ष महाकुम्भ, छः वर्ष उपरान्त अर्द्धकुम्भ और प्रत्येक वर्ष माघ मेले का आयोजन होता है। आइए जानते हैं प्रयागराज की कहानी और उसका महत्व। जिस तरह से सनातन धर्म अनादि है, उसी प्रकार से प्रयागराज की महिमा का कोई आदि-अन्त नहीं है। मान्यताओं के अनुसार उत्कृष्ट यज्ञ और दान, दक्षिणा आदि से सम्पन्न स्थल देखकर भगवान विष्णु एवं भगवान शिव शंकर आदि देवताओं ने इस स्थल का नाम प्रयागराज रख दिया, ऐसा उल्लेख कई पुराणों से मिलता है।

प्रकृष्टं सर्वयोगभ्यः प्रयागमिति गीयते।
दृष्ट्वा प्रकृष्टयागेभ्यः पुष्टेभ्यो दक्षिणादिभिः।
प्रयागमिति तन्नाम कृतं हरिहरादिभिः।।

भारत देश, विश्व की आत्मा कहलाता है और तीर्थराज प्रयागराज भारत का प्राण कहा गया है। अरण्य और नदी संस्कृति के बीच जन्म लेकर ऋषियों, महर्षियों की तपोभूमि के रूप में पंचतत्वों को पल्लवित करने वाली प्रयागराज की धरती पर सदियों से महाकुम्भ, अर्द्धकुम्भ, माघ मेले आदि में लाखों, करोड़ों भक्तों की आस्था, देश को हमेशा उर्जा देती रही है। यहां प्रत्येक बारह वर्ष उपरान्त महाकुम्भ, छः वर्ष उपरान्त अर्द्धकुम्भ और प्रत्येक वर्ष माघ मेले का आयोजन होता है जिसमें असंख्य श्रद्धालु बिना निमंत्रण के त्रिवेणी स्नान करने आते हैं। प्रयागराज की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि जिस प्रकार ग्रहों में सूर्य और चन्द्रमा श्रेष्ठ होता है, उसी तरह तीर्थों में प्रयागराज सर्वोत्तम तीर्थ है।

ग्रहाणां च यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं प्रयागाख्यमनुत्तमम् ।।

स्कन्द पुराण, अग्नि पुराण, शिव पुराण, ब्रह्मपुराण, वामन पुराण, बृहन्नारदीय पुराण, मनुस्मृति, वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, रघुवंश महाकाव्य आदि में भी प्रयागराज की महत्ता का विस्तार से वर्णन किया गया है। प्रयाग में त्रिवेणी के तट पर केवल गंगा, यमुना तथा अदृश्य सरस्वती का संगम ही नहीं अपितु अनेकानेक सम्प्रदायों, संस्कृतियों एवं ज्ञान, वैराग्य और भक्ति का भी अद्भुत संगम विद्यमान है।

शास्त्रों के अनुसार जहां गंगा, यमुना और सरस्वती तीनों का संगम हो वह ब्रह्मलोक और विष्णुलोक के बराबर का स्थान हो जाता है।

महर्षि वेदव्यास के अनुसार तीर्थराज प्रयाग में यज्ञ करना या यज्ञ आदि क्रियाओं में सम्मिलित होने से मनुष्य के सारे पाप, पुण्य में परिवर्तित हो जाते हैं, ऐसी तीर्थराज प्रयाग की अद्भुत महिमा है। तीर्थराज प्रयाग एक ऐसा पावन स्थल है, जिसकी महिमा अधिकांश धर्म ग्रंथों में वर्णित है। तीर्थराज प्रयाग को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रदाता कहा गया है। ब्रह्मपुराण के मतानुसार यह स्थल सभी तीर्थों में श्रेष्ठ है। प्रकृष्टत्वात्प्रयागोऽसौ प्राधान्यात् राजशब्दवान्। अपनी उत्कृष्टता के कारण यह 'प्रयाग' है और प्रधानता के कारण 'राज' शब्द से युक्त है। माघ मास में जब सूर्य मकर राशि में आए तो एक माह तीर्थराज प्रयाग में संगम तट पर रहकर कल्पवास शरीर और मन दोनों का कायाकल्प होता है। किसी भी प्रकार के पाप की मुक्ति के लिए जो यहां दान-पुण्य सहित सच्चे मन से आराधना करता है और कम से कम तीन रात्रि निवास करता है उसे पापों से मुक्ति मिलती है।

संगम का क्षेत्र, अक्षय क्षेत्र कहलाता है, यहां किया हुआ धर्म-कर्म हमेशा अक्षय रहता है उसका क्षय नहीं होता है, यही कारण है कि सदियों से पुण्य स्नान, दान की परम्परा अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। जनवरी 2025 में प्रयागराज में विश्व का सबसे बड़ा धार्मिक आयोजन महाकुम्भ के रूप में आयोजित होगा जिसमें देश-विदेश से करोड़ों भक्तों का आगमन, गंगा, यमुना, अदृश्य सरस्वती का संगम स्नान एवं कल्पवास होगा। नदियों के साथ-साथ यहां ज्ञान की त्रिवेणी अनवरत प्रवाहित होती है। महाकुम्भ के दौरान प्रयाग की धरती पर ज्ञान, विज्ञान, अध्यात्म की चर्चा भारतीय संस्कृति को पल्लवित करेगी। प्रयाग महात्म्य के अनुसार अनादिकाल से प्रयागराज ज्ञान और भक्ति का सर्वश्रेष्ठ स्थान रहा है।

□□□

महाकुंभ और महाराज हर्षवर्धन

भारत भूमि में हर देश, वर्ष, काल, परिस्थित में महापुरुषों का अवतरण होता रहा है, जिससे यहाँ की अक्षुण्ण परंपराएँ संयोजित, सुव्यवस्थित और गतिशील बनी रहें। ईसवी 590 की बात है-- थानेश्वर भूमि पर महाराज हर्षवर्धन का जन्म हुआ, इनके पिता का नाम प्रभाकर वर्धन और माता यशोमती थीं, जो बहुत उदार, मानवतावादी, और परदुख से द्रवित होने वाले थे। पत्नी का नाम दुर्गावती था, वे सुशील, धार्मिक और प्रजावत्सला नारी थीं। इनके भव्य साम्राज्य, सुखी- सम्पन्न प्रजा और अपराजित प्रवृत्ति के कारण लोग इन्हें महाराजा की उपाधि दिए थे। वे बहुत विद्वान और पांडित्य के पुजारी थे। उनके लिखे तीन नाटक समाज में बहुत लोकप्रिय हुए। पर उनकी प्रसिद्धी इन सबसे बढ़कर उनकी उदारमना दानशीलता से थी।

इनका शासनकाल (606 से 647 ईसवी) तक उत्तर भारत के पुष्यभूमि वंश में था। वे महान प्रतापी, दानी हिंदू सम्राट थे, जिन्होंने कन्नौज को राजधानी बना कर शासन किया। वे प्रत्येक 5 वर्ष में प्रयागराज की महामोक्ष परिषद में अपना राजकोष, आभूषण, और यहाँ तक कि पहनने के वस्त्र तक दान कर देते थे। उनके जीवन की पाँच प्रमुख जानकारियाँ हैं------



उन्होंने गुप्तकाल के पतन के पश्चात उत्तर भारत में एकता स्थापित की ।इनका साम्राज्य हिमालय से लेकर नर्मदा तक व्यापक था। इतने विस्तृत साम्राज्य में प्रजा में कोई क्लेश और विक्षोभ नहीं था। अपनी न्यायप्रियता के लिए वे जाने जाते थे और यही उनकी लोकप्रियता का कारण बना।

वे स्वंय बहुत विद्वान थे और विद्वानों को संरक्षण देना अपना कर्तव्य समझते थे।इनके तीनों नाटक -- नागानंद, प्रियदर्शिका, और रत्नावली इनकी अद्भुत प्रतिभा का पारिचायक बने।उद्भट विद्वान बाणभट्ट को आपका संरक्षण प्राप्त था।

आरंभ में ये शैव मतानुलंबी थे। आगे चलकर वे महायान बौद्ध धर्म के अनुयायी बने। लेकिन सभी धर्मों का सम्मान करना इनका विशेष गुण था। कुंभ मेला में इनकी सहभागिता आज भी याद की जाती है और यह भी मान्यता है कि कुंभ के वृहद सुसज्जित मेले की योजना भी हर्षवर्धन की ही देन है। इस मेले में वे 75 दिनों तक दान करते रहते। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने उनके शासनकाल में भारत की यात्रा की थी और उनकी बहुत प्रशंसा भी की थी।

वे महामोक्ष परिषद का खजाना प्रत्येक पाँच वर्ष बाद संचित संपत्ति, धनराशि आदि हर वर्ग के गरीबों, ब्राह्मणों, को दान कर देते, यहाँ तक कि शरीर का वस्त्र भी और फिर अपनी बहन राजश्री से वस्त्र उधार लेते थे। उनके दान की कोई परिसीमा नहीं थी। बौद्ध धर्मावलंबी होते हुए भी वे नित्य शिव आराधना और सूर्य पूजा किया करते थे।

□□□

अलोपी देवी मंदिर और महाकुंभ

महाकुंभ और कल्पवास में आए श्रद्धालुओं का एक और आकर्षण होता है, यहाँ के दो शक्तिपीठों का दर्शन। माँ जगदंबा का अलोपी मंदिर भारत के उत्तर प्रदेश राज्य में प्रयागराज के अलोपीबाग क्षेत्र में स्थित एक मंदिर है। अलोप का अर्थ है छिप जाना ।यह स्थान पवित्र संगम के निकट है, जहाँ गंगा, यमुना और पौराणिक सरस्वती नदियाँ मिलती हैं। कुम्भ मेला इस स्थान के निकट ही है।



कुछ ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार, मराठा योद्धा श्रीनाथ महादजी शिंदे ने वर्ष 1771-1772 में अपने प्रयागराज प्रवास के दौरान संगम स्थल का विकास किया था।इस पौराणिक मंदिर की बड़ी मान्यता है।

कालान्तर में 1800 के दशक में महारानी बैजाबाई सिंधिया ने प्रयागराज में संगम घाटों और मंदिरों के नवीनीकरण के लिए कुछ कार्य किए, जिससे इन मंदिरों को विकसित, सुसज्जित होने का अवसर मिलता रहा।

इस मंदिर की विशेषता यह है कि इस मंदिर में किसी भी देवी- देवता की मूर्ति नहीं है, बल्कि यहाँ लकड़ी का झूला या 'डोली' है, जिसकी पूजा की जाती है। अलोपी अर्थात लोप या गायब हुई होता है। इसके नाम की उत्पत्ति हिंदू मान्यता में निहित है कि अपनी पत्नी सती की मृत्यु के बाद, दुखी शिव उनके मृत शरीर के साथ आकाश में विरक्त होकर यात्रा करते रहते थे। इस पीड़ा से मुक्ति दिलाने के लिए विष्णु ने शव पर अपना सुदर्शन चक्र फेंका, जिसके परिणामस्वरूप शरीर के विभिन्न हिस्से भारत के विभिन्न स्थानों पर गिरे, जो देवी के शरीर के अंगों के स्पर्श से पवित्र हो गए और इसलिए उन्हें पवित्र माना गया।

यहाँ तीर्थयात्रा के लिए देवी का अंतिम भाग बायां हाथ इस स्थान पर गिरा एवं गिरते ही लोप या गायब हो गया, जिससे इसे "अलोपी" नाम दिया गया। हालाँकि,

यह दावा विवादास्पद है क्योंकि प्रयागराज में केवल एक शक्ति पीठ है जो ललिता देवी मंदिर है, जहाँ माना जाता है कि सती की उंगलियाँ गिरी थीं।

एक और अधिक विश्वसनीय संस्करण क्षेत्र के पुराने निवासियों द्वारा वर्णित मौखिक इतिहास परंपराओं में पाया जाता है। यह उस समय की बात है जब पूरा क्षेत्र खूंखार डकैतों से भरे घने जंगलों से घिरा हुआ था। एक बारात जंगल से होकर गुजर रही थी। मध्यकाल में विवाह जुलूस, लुटेरों का सबसे असुरक्षित निशाना हुआ करते थे क्योंकि वे उपहार के रूप में प्राप्त सोने और अन्य धन से लदे हुए लौटते थे। जंगल के अंदर जाने पर बारात ने खुद को लुटेरों से घिरा हुआ पाया। सभी पुरुषों को मारने और धन लूटने के बाद लुटेरे दुल्हन की 'डोली' या गाड़ी की ओर मुड़े। जब उन्होंने गाड़ी का अनावरण किया तो पाया कि अंदर कोई नहीं था। दुल्हन जादुई तरीके से गायब हो गई थी. यह शब्द चारों ओर चला गया, इतिहास किंवदंती बन गया और किंवदंती मिथक बन गई। [उद्धरण वांछित] जिस स्थान पर यह घटना घटी वहां एक मंदिर बना और स्थानीय लोगों ने दुल्हन को "अलोपी देवी" या 'कुंवारी देवी जो गायब हो गई थी' के रूप में पूजा करना शुरू कर दिया।



क्षेत्र में रहने वाले हजारों लोगों द्वारा अलोपी देवी की पूजा की जाती है, जो हर त्योहार, विवाह, जन्म और मृत्यु को अपने संरक्षक देवता के साथ मनाया करते हैं।

हालाँ कि यह सदा से ही एक प्रमुख मंदिर था, लेकिन 1990 के दशक के बाद से इसकी पहुंच और अनुयायियों में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है, जिससे आसपास के क्षेत्र का बड़े स्तर पर नवीनीकरण हुआ है।

अब यहाँ साल भर भंडारा, नामकरण, मुंडन, नामकरण, जनेऊ, ककन छूटना, मौर सेरवाना आदि चलता रहता है।

□□□

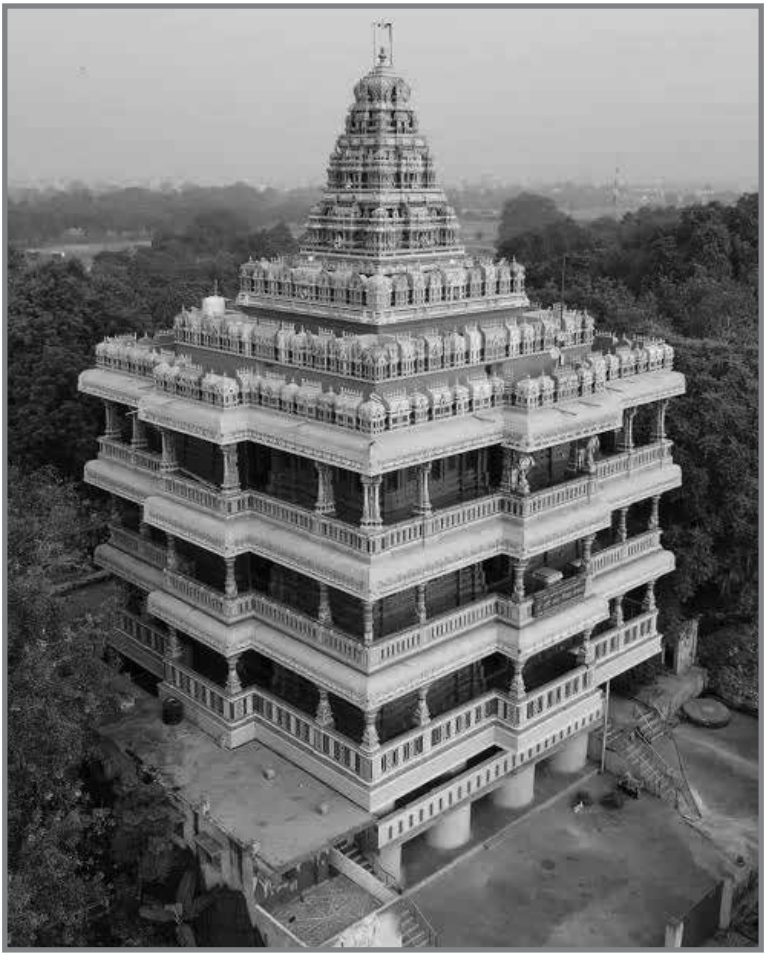

आदि शंकर विमान पत्तनम् मंदिर

यह संगम तट पर अवस्थित दक्षिण भारतीय शैली में बना चार मंजिला अद्भुत सौंदर्ययुक्त मंदिर है। इसकी भीति प्रतिमा कला, साज- सज्जा, रंग-विन्यास, पूजा-पद्धति, सब कुछ देख कर मन प्रफुल्लित हो जाता है।दक्षिण भारत से आए हुए लोगों को अपने ठाँव जैसा दिखने वाला यह मंदिर सहज ही आकर्षित करता है। यह मंदिर आदि शंकराचार्य को समर्पित है।

महाकुंभ यात्रा का प्रमुख धाम -श्रृंगवेरपुर

यह धाम प्रयागराज से उत्तर प्रतापगढ़ वाले मार्ग पर लगभग 40 किमी की दूरी पर स्थित है।इसकी महत्ता इसीलिए और अधिक बढ़ जाती है कि कि यह नागरी सभ्यता और वनवासी सभ्यता के बीच मानवतावादी सभ्यता के सेतु निर्मित करती है। एक ओर राजकुमार राम और दूसरी ओर निषादराज।

इस स्थान पर श्रृंगी ऋषि ने कठिन साधना की थी और अनेक सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। महाराजा दशरथ के कहने पर मुनि वशिष्ठ ने इन्हें उनके पुत्रकाम यज्ञ में सादर आमंत्रित किया था।

श्रृंगी ऋषिहिं वशिष्ठ बुलावा।
पुत्रकाम शुभ यज्ञ करावा।
प्रेम सहित मुनि आहुति दीन्हें।
प्रगटे अगनि चरु कर लीन्हें।



इसीलिए कहा जाता है कि महानायक मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम का जन्म तीर्थराज प्रयाग में गंगा तट स्थित श्रृंगवेरपुर धाम की वजह से ही हुआ था। रघुवंश के विस्तार के लिए संतान प्राप्ति की लालसा से राजा दशरथ ने श्रृंगवेरपुर में ही श्रृंगी ऋषि से पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था। इस यज्ञ की हवि यानी खीर को ही राजा दशरथ ने अपनी तीनों रानियों को खिलाया था।

भगवान राम के जन्म की वजह से 'संतान तीर्थ' भी कहलाता है। अनेक लोग श्रृंगी ऋषि के आश्रम और मंदिर में अपनी संतान कामना की याचना करते हैं। गंगा के किनारे सुरम्य वनों के बीच यह तीर्थ स्थल मनोहारी लगता है।

रामायण और पुराणों के कथानथक के अनुसार श्रृंगवेरपुर में हुए इस पुत्रेष्टि यज्ञ और इसके संकल्प की पूर्ति के लिए श्रृंगी ऋषि द्वारा किए गए त्याग की वजह से ही राजा दशरथ के यहाँ ब्रह्म रुपी भगवान श्री राम सहित चार पुत्रों का जन्म हुआ था।

आज भी देश के कोने-कोने से हजारों लोग संतान प्राप्ति की कामना के लिए यहां पूजा-अर्चना कर रोट और खीर चढ़ाते हैं। रामनवमी पर तो यहां भव्य मेला भी लगता है। राम के जन्म की वजह से श्रृंगवेरपुर को 'संतान तीर्थ' हैं। रामनवमी को भव्य मेला लगता है। अनेक धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक अनुष्ठान आज भी होते हैं।

त्रेता युग में पिता से मिले अभिशाप के कारण से उम्र के चौथेपन में पहुँचने के बाद भी अवध नरेश राजा दशरथ तीन-तीन विवाह के पश्चात संतान सुख से वंचित ही रहे। उन्हें रघु कुल के वंशवृद्धि की चिंता सताने लगी। अनेकों साधनात्मक उपाय व्यर्थ



साबित हुए, तो अवध नरेश ने वशिष्ठ मुनि की शरण ली। वशिष्ठ मुनि ने उन्हें बताया की अभिशाप से बचने के लिए सिर्फ श्रृंगवेरपुर ही इकलौती जगह है, जहां श्रृंगी ऋषि से पुत्रेष्टि यज्ञ कराकर रघुवंश को विस्तार दिया जा सकता है।

भगवान राम के जन्म के लिए श्रृंगी ऋषि ने किया था पुत्रेष्टि यज्ञ किया, यज्ञ की साधना बेहद कठिन थी। महीनों तक यज्ञ चलने के बाद इसके संकल्प को पूरा करने के लिए इसे संपन्न कराने वाले को अपना पूरा जीवन इसी जगह पर ही बिताना था। राजा दशरथ के अनुरोध पर दिव्य ज्ञानी और त्रिकालदर्शी श्रृंगी ऋषि पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए तैयार हो गए क्योंकि अपने दिव्य ज्ञान से उन्होंने संतान के रूप में ब्रह्म रूपी भगवान श्री राम के अवतरण को जान लिया था।



तीनों रानियों ने हवि खाकर सभी देवी- देवताओं के आशीर्वाद से चार पुत्रों को जन्म दिया - राम- लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न।

श्रृंगी ऋषि ने मुनि वशिष्ठ की उपस्थिति में राजा दशरथ को साथ लेकर गंगा तट

के इसी पेड़ के नीचे कई दिनों तक पुत्रेष्टि यज्ञ किया। इस यज्ञ से उत्पन्न हवि (यज्ञ की राख) को दशरथ ने अपनी तीनों रानियों को खिलाया तो जल्द ही उन्हें अभिशाप से मुक्ति मिली और उनके यहां धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी विष्णु के चार अवतारों राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का जन्म हुआ।

राम जन्म के बाद महाराज दशरथ ने दत्तक पुत्री शांता को श्रृंगी ऋषि से ब्याहा था।

रघुकुल में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के जन्म पर अयोध्या समेत समूचे अवध में कई दिनों तक उत्सव मनाया गया। उत्सव का यह सिलसिला राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के जन्मोत्सव के रुप में जारी रहा। श्रृंगी ऋषि के चमत्कार से प्रभावित होकर राजा दशरथ अपनी तीनों रानियों और चारों पुत्रो को आशीर्वाद दिलाने के लिए दोबारा श्रृंगवेरपुर आए। उन्होंने यही पर अपनी दत्तक पुत्री राजा महिपाल की बेटी शांता का विवाह श्रृंगी ऋषि के साथ कराया।

विवाह के बाद राजकुमारी से ऋषि पत्नी बनने पर वे आनंदी माई हो गई थीं ।राम के बहन के रूप में आज भी उनको याद किया जाता है।



भगवान राम की बहन शांता का विवाह जिस जगह श्रृंगी ऋषि के साथ हुआ, वहाँ अब भी एक हवन कुंड बना हुआ है। श्रृंगी ऋषि से विवाह के बाद शांता एक राजकुमारी से आनंदी माई हो गईं थी। पुराणों के अनुसार , अपनी बहन शांता से मिलने और श्रृंगी ऋषि का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए भगवान राम कई बार श्रृंगवेरपुर आए थे। जन्म का मूल कारण होने की वजह से ही वनवास काल की शुरुआत भी उन्होंने यही श्रृंगी ऋषि से आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद ही की थी।

भगवान राम के जन्म के बाद त्रेता युग से ही श्रृंगी ऋषि और आनंदी माई के नाम से मशहूर शांता जी का भव्य मंदिर है। मंदिर पर फहराती पताकाएं इस संतान तीर्थ के महत्व को दर्शाती हैं। आज भी यहां देश के कोने-कोने से हजारों श्रद्धालु संतान प्राप्ति की कामना लेकर आते हैं।

इस मंदिर की एक-एक सीढ़ियों को नमन करते हैं। श्रृंगी ऋषि और शांता देवी की बेहद प्राचीन मूर्तियों के सामने शीश झुका कर प्रणाम करते हैं।

मान्यता है की गंगा में स्नान के बाद जो भी स्त्री सच्चे मन से इस मंदिर में पूजा-अर्चना कर खीर व रोट (विशेष पूड़ी) चढ़ाकर मूर्तियों के पास रंगीन धागे बांधती है, उसकी संतान प्राप्ति की कामना जरूर पूरी होती है। संतान प्राप्ति के लिए यहाँ बड़ी संख्या में श्रद्धालु दर्शन-पूजन के लिए आते हैं।

भगवान राम का जन्म भले ही अयोध्या में हुआ हो, लेकिन राजा दशरथ के घर उनके अवतरण की प्रक्रिया संतान तीर्थ श्रृंगवेरपुर से ही हुई। शायद इस वजह से गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण में इस संतान तीर्थ के महत्व पर लिखा है... 'अगर श्रृंगवेरपुर न होता तो दशरथ के घर राम का जन्म नहीं होता।"

□□□



बालपन में शिव की कलात्मक मुद्रा



संगम तट पर सशक्त महिलाकरण



संगम पर पक्षियों का जल- विहार



पक्षियों का विमर्श और नवाचार



मेरी पुस्तक का आवरण संगम तट पर श्री हनुमान ध्वजा को चढ़ाते हुए



प्रोफेसर चित्रलेखा सिंह की कलाकृति यमुना



संगम के विश्व प्रसिद्ध लेटे हनुमान जी



राधा-कृष्ण की अनुपम छवि



महाकुंभ में किन्नर विमर्श